श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष–८ मई–१९८९ अंक–५

Swami Nikileshwaranandaji Maharaj
Gujrat

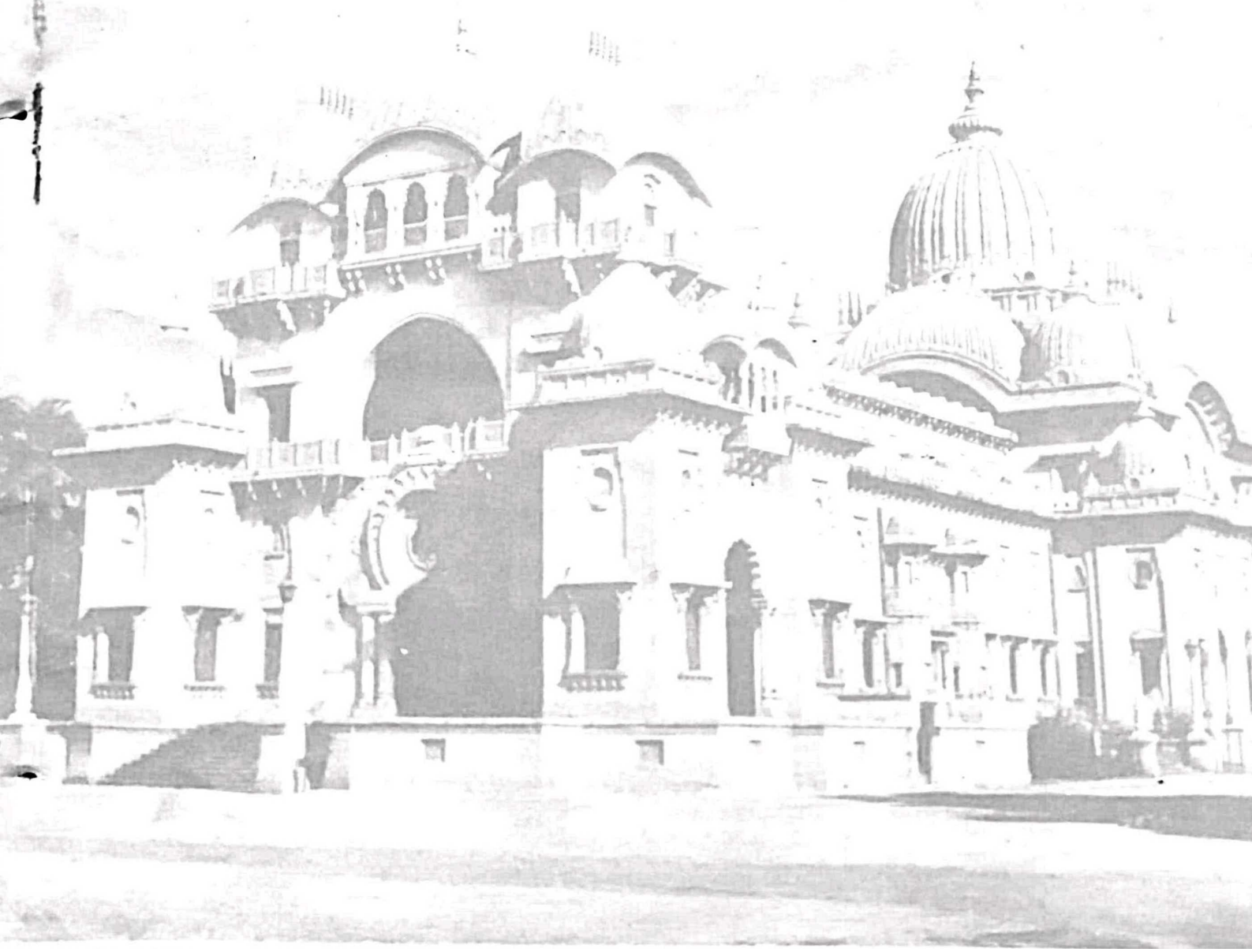

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता—रामपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमरावती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द डनढनिया - कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी नागोरी कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा - समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चितुभाई भलाभाई पटेल—खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन बंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन—कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ—हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु सेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, रांची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्ति नाथानन्द—रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे - दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप—रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कुमार प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी कोटा, (राजस्थान)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. सुन लो मेरी बात	सारदा तनय	२
३. अतुलनीय भगवान बुद्ध	स्वामी विवेकानन्द	३
४. गौतमबुद्ध की तुलना संभव नहीं	ओशो रजनीश	४
५. श्रीमाँ सारदा देवी के संस्मरण (२)	स्वामी अपूर्वानन्द	७
६. स्वामी विशुद्धानन्द महाराज की चार स्मृतियाँ	स्वामी आत्मस्थानन्द	१२
७. स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में		१४
८. आत्मनोमोक्षार्थं जगद्धिताय च	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१६
९. सरदारपूर्ण सिंह की दृष्टि में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द	स्वामी विदेहात्मानन्द	२०
१०. एकान्तवास एवं निर्जन में साधना	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	२३
११. विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	२४
१२. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२७
१३. अबुझमाड़ ग्रामीण विकास प्रकल्प	स्वामी आत्मानन्द	३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ८ मई — १९८९ अंक — ५

इष्टदेव का हृदय कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

यह देह जब असार, अनित्य ही है तो साधु-भक्तगण इसकी हिफाजत क्यों करते हैं ? खाली सन्दूक की कोई परवाह नहीं करता, जिस सन्दूक में सोना-चाँदी, हीरे जवाहिरात आदि कीमती वस्तुएं होती हैं, उसकी सभी लोग बड़ी सावधानी से रक्षा किया करते हैं। जिनके हृदय में भगवान् विराजमान होकर नित्य लीला-विलास कर रहे हैं, वे साधु भक्तगण अपनी देह की यत्नपूर्वक देख-रेख किए बिना नहीं रह सकते।

(२)

चौसर के खेल में गोटी सब खानों का चक्कर लगाए बिना मंजिल पर नहीं पहुँचती। यदि दो गोटियाँ जोड़ी बाँधकर इकट्ठी चलें तभी उन्हें कोई काट नहीं सकता, नहीं तो अकेली गोटी मंजिल के पास पहुँचकर पकते-पकते भी कट जा सकती है। इसी प्रकार साधना के मार्ग पर भी यदि गुरु और इष्ट के साथ युक्त होकर आगे बढ़ा जाए तो बाधाविघ्न का भय नहीं रहता, यात्रा निर्विघ्न रूप से सफल हो सकती है।

(३)

जब तक मनुष्य बच्चों जैसा सरल नहीं हो जाता तब तक उसे ज्ञान लाभ नहीं होता। सब दुनियादारी विषय बुद्धि को भूलकर बालक जैसे नादान बन जाओ, तभी तुम ज्ञान प्राप्त कर सकोगे।

(४)

अपने भावों और भावनाओं को, अपने श्रद्धा-विश्वास को अपने ही में रखो। उनके बारे में सबको बताते मत फिरो। नहीं तो भारी हानि होती है।

सुन लो मेरी बात

– सारदा तनय

(आसावरी—तीनताल)

प्रभो अब सुन लो मेरी वात।
प्राणसखा जीवनधन तुम ही
मेरे गुरु पितु मात॥

चंचल यह मन फिर विषय-पवन
सदा करे आघात।
कैसे हो प्रभु ध्यान तुम्हारा
जो तुम ना दो साथ॥

ठाकुर तुम तो बहा रहे हो
कृपा-पवन दिनरात।
तान न पाऊँ पाल नाव का,
मुझमें नहीं बिसात॥

ना मैं, ना मैं, तुम ही, तुम ही—
यह अनुभव दो नाथ।
मुझे बचा लो भवमाया से
आप पकड़ कर हाथ॥

अतुलनीय भगवान बुद्ध

—स्वामी विवेकानन्द

.....संक्षेप में मैं तुम्हें एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बताऊंगा, जिन्होंने सचमुच कर्मयोग की शिक्षाओं को कार्यरूप में परिणत किया था। वे हैं बुद्ध। एक मात्र वे ही ऐसे मानव हैं, जिन्होंने इसकी पूर्ण साधना की। भगवान् बुद्ध को छोड़कर संसार के अन्य सभी पैगम्बरों की निःस्वार्थ कर्म-प्रवृत्ति के पीछे कोई न कोई बाह्य उद्देश्य अवश्य था। एकमात्र उनके अपवाद को छोड़कर संसार के अन्य सब पैगम्बर दो श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं एक तो वे, जो अपने को संसार में भगवान् का अवतार कहते थे, और दूसरे वे, जो अपने को केवल ईश्वर का दूत मानते थे; ये दोनों अपने कार्यों की प्रेरणा-शक्ति बाहर से लेते थे, बहिर्जगत् से ही पुरस्कार की आशा करते थे—उनकी वाणी कितनी ही आध्यात्मिकतापूर्ण क्यों न रही हो। परन्तु एकमात्र बुद्ध ही ऐसे पैगम्बर थे, जो कहते थे, "मैं ईश्वर के बारे में तुम्हारे मत-मतान्तरों को जानने की परवाह नहीं करता। आत्मा के बारे में विभिन्न सूक्ष्म मतों पर बहस करने से क्या लाभ? भला करो और भले बनो। बस, यही तुम्हें निर्वाण की ओर अथवा जो कुछ भी सत्य है उसकी ओर ले जायगा।" उनके कार्यों के पीछे व्यक्तिगत उद्देश्य का लवलेश भी नहीं था, और उनकी अपेक्षा अधिक कार्य भला किस व्यक्ति ने किया है? इतिहास में मुझे जरा एक ऐसा चरित्र तो दिखाओ, जो [illegible] ऊपर इतना ऊँचा उठ गया हो। सारी मानव- [illegible] में दिये गये [illegible] केवल एक ही चरित्र उत्पन्न किया है हमें लगता है कि वे [illegible] दर्शन! इतनी व्यापक सहानुभूति! भिन्न बात कह रहे हैं। [illegible] प्रचार करते हुए भी इन महान् दरिद्र, पीड़ितों की सेवा [illegible] में क्षुद्रतम प्राणी के प्रति भी गहरी की शिक्षा आदि के लि[illegible] और फिर भी उन्होंने अपने लिए किसी प्रकार का दावा नहीं किया। वास्तव में वे ही आदर्श कर्मयोगी हैं, पूर्णरूपेण हेतुशून्य होकर उन्होंने कर्म किया है; और मानव जाति का इतिहास यह दिखाता है कि सारे संसार में उनके सदृश श्रेष्ठ महात्मा और कोई पैदा नहीं हुआ। उनके साथ अन्य किसी की तुलना नहीं हो सकती। हृदय तथा मस्तिष्क के पूर्ण सामंजस्य-भाव के वे सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं; आत्मशक्ति का जितना विकास उनमें हुआ, उतना और किसी में नहीं हुआ। संसार में वे सर्वप्रथम श्रेष्ठ सुधारक हैं। उन्होंने सर्वप्रथम साहस पूर्वक कहा था, "चूँकि कुछ प्राचीन हस्तलिखित पोथियाँ प्रमाण के लिए प्रस्तुत की जाती हैं, केवल इसीलिए उसपर विश्वास मत कर लो; उस बात को इसलिए भी न मान लो कि उस पर तुम्हारा जातीय विश्वास है अथवा बचपन से ही तुम्हें उस पर विश्वास कराया गया है; वरन् तुम स्वयं उस पर विचार करो, और विशेष रूप से विश्लेषण करने के बाद यदि देखो कि उससे तुम्हारा तथा दूसरों का भी कल्याण होगा, तभी उस पर विश्वास करो, उसी के अनुसार अपना जीवन बिताओ तथा दूसरों को भी उसी के अनुसार चलने में सहायता पहुंचाओ।"

केवल वही व्यक्ति सबकी अपेक्षा उत्तम रूप से कार्य करता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही। और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायगा, तो वह एक बुद्ध बन जायगा, और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकट होगी, जो संसार की अवस्था को सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित कर सकती है। यह व्यक्ति कर्मयोग के चरम आदर्श का प्रतीक है।

(विवेकानन्द साहित्य: तृतीय खण्ड: पृ० ८९-९० से साभार संकलित)

गौतम बुद्ध की तुलना संभव नहीं

—ओशो रजनीश

गौतम बुद्ध ऐसे हैं जैसे हिमाच्छादित हिमालय। पर्वत तो और भी हैं, हिमाच्छादित पर्वत और भी हैं, पर हिमालय अतुलनीय है। उसकी कोई उपमा नहीं है। हिमालय बस हिमालय जैसा है। गौतम बुद्ध बस गौतम बुद्ध जैसे। पूरी मनुष्य जाति के इतिहास में वैसा महिमापूर्ण नाम दूसरा नहीं। गौतम बुद्ध ने जितने हृदयों की वीणा को बजाया है, उतना किसी और ने नहीं। गौतम बुद्ध के माध्यम से जितने लोग जागे और जितने लोगों ने परम-भगवत्ता उपलब्ध की है, उतनी किसी और के माध्यम से नहीं।

गौतम बुद्ध की वाणी अनूठी है। और विशेषकर उन्हें, जो सोच-विचार, चिंतन-मनन, विमर्श के आदी हैं।

बुद्ध का धर्म बुद्धि का धर्म कहा गया है। बुद्धि पर उसका आदि तो है, अंत नहीं। शुरुआत बुद्धि से है। प्रारंभ बुद्धि से है। क्योंकि मनुष्य वहाँ खड़ा है। लेकिन अंत, अंत उसका बुद्धि में नहीं है। अंत तो परम अतिक्रमण है, जहाँ सब विचार खो जाते हैं, सब बुद्धिमत्ता विसर्जित हो जाती है; जहाँ केवल साक्षी, मात्र साक्षी शेष रह जाता है। लेकिन बुद्ध का प्रभाव उन लोगों में तत्क्षण अनुभव होता है जो सोच-विचार में कुशल हैं।

बुद्ध के साथ मनुष्य जाति का एक नया अध्याय शुरू हुआ। पच्चीस सौ वर्ष पहले बुद्ध ने वह कहा जो आज भी सार्थक मालूम पड़ता है, और जो आने वाली सदियों तक सार्थक रहेगा। बुद्ध ने विश्लेषण दिया, 'एनालिसिस' दी। और जैसा सूक्ष्म विश्लेषण उन्होंने किया, कभी किसी ने न किया था, और फिर दुबारा कोई न कर पाया। उन्होंने जीवन की समस्या के उत्तर शास्त्र से नहीं दिये, विश्लेषण की प्रक्रिया से दिये।

बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक हैं। उनके साथ श्रद्धा और आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो समझ पर्याप्त है। अगर तुम समझने को राजी हो, तो तुम बुद्ध की नौका में सवार हो जाओगे। अगर श्रद्धा भी आएगी, तो समझ की छाया होगी। लेकिन समझ के पहले श्रद्धा की माँग बुद्ध की नहीं है। बुद्ध यह नहीं कहते कि जो मैं कहता हूँ, भरोसा कर लो। बुद्ध कहते हैं, सोचो, विचारो, विश्लेषण करो; खोजो, पाओ अपने अनुभव से, तो भरोसा कर लेना।

बुद्ध का धर्म, विश्लेषण का धर्म है। लेकिन विश्लेषण से शुरू होता है, समाप्त तो परम संश्लेषण पर होता है। बुद्ध का धर्म संदेह का धर्म है। लेकिन संदेह से यात्रा शुरू होती है, समाप्त नहीं होती। समाप्त तो परम श्रद्धा पर होती है।

बुद्ध ने बड़ा दुस्साहस किया। बुद्ध जैसे व्यक्ति पर भरोसा करना एकदम सुगम होता है। उसके उठने-बैठने में प्रामाणिकता होती है। उसके शब्द-शब्द में वजन होता है! उसके होने का ढंग स्वयंसिद्ध होता है। उस पे श्रद्धा आसान हो जाती है। लेकिन बुद्ध ने कहा, तुम मुझे अपनी बैशाखी मत बनाना। तुम अगर लंगड़े हो, और मेरे बैशाखी के सहारे चल लिए—कितनी दूर चलोगे? मंजिल तक न पहुँच पाओगे। आज मैं साथ हूँ, कल मैं साथ न रहूँगा, फिर तुम्हे अपने ही पैरों पर चलना है। मेरी रोशनी से मत चलना, क्योंकि थोड़ी देर को संग-साथ हो गया है अंधेरे जंगल में। तुम मेरी रोशनी में थोड़ी देर रोशन हो लोगे; फिर हमारे रास्ते अलग हो जायेंगे। मेरी रोशनी मेरे साथ होगी,

तुम्हारा अंधेरा तुम्हारे साथ होगा। अपनी रोशनी पैदा करो। 'अप्प दीपो भव'!

बुद्ध से ज्यादा कोई नहीं बोला, और बुद्ध से ज्यादा चुप भी कोई नहीं है। कितना बुद्ध बोले हैं! अन्वेषक खोज करते हैं तो वे कहते हैं, एक आदमी इतना बोला, यह संभव कैसे है। उन्हें डर लगता है कि इसमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त है—दूसरों ने डाल दिया है। कुछ भी प्रक्षिप्त नहीं है। जितना बुद्ध बोले, पूरा संग्रहीत ही नहीं हुआ है। खूब बोले। और फिर भी उनसे ज्यादा चुप कोई भी नहीं है। क्योंकि जहाँ-जहाँ नहीं बोलना था, वहाँ नहीं बोले। ईश्वर के संबंध में एक शब्द न कहा। इस खतरे को भी मोल लिया कि लोग नास्तिक समझेंगे। और आज तक लोग नास्तिक समझे जा रहे हैं। और इससे बड़ा कोई आस्तिक कभी हुआ नहीं।

बुद्ध महा आस्तिक हैं। अगर परमात्मा के संबंध में कुछ कहना संभव नहीं है तो फिर बुद्ध ने ही कहा—चुप रहके; इशारा किया।

बुद्ध के धर्म को शून्यवादी कहा गया है। शून्यवादी उनका धर्म है। लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि शून्य पर उनकी बात पूरी हो जाती है। नहीं, बस शुरू होती है।

बुद्ध एक ऐसे उत्तुंग शिखर हैं, जिसका आखिरी शिखर हमें दिखायी नहीं पड़ता। बस थोड़ी दूर तक हमारी आँखें जाती हैं, हमारी आंखों की सीमा है। थोड़ी दूर तक हमारी गर्दन उठती है, हमारी गर्दन के झुकने की सामर्थ्य है। और बुद्ध खोते चले जाते हैं दूर हिमाच्छादित शिखर हैं। बादलों के पार! उनका प्रारंभ तो दिखायी पड़ता है, उनका अंत दिखायी नहीं पड़ता। यही उनकी महिमा है। और प्रारंभ को जिन्होंने अंत समझ लिया, वे भूल में पड़ गये। प्रारंभ से शुरू करना; लेकिन जैसे-जैसे तुम शिखर पे उठने लगोगे, और आगे, और आगे दिखायी पड़ने लगा, और आगे दिखायी पड़ने लगेगा।

बहुत लोग बोले हैं। बहुत लोगों ने मनुष्य के रोग का विश्लेषण किया है; लेकिन ऐसा सचोट नहीं। बड़े सुंदर ढंग से लोगों ने बातें कही हैं, बड़े गहरे प्रतीक उपाय में लाये हैं। पर बुद्ध, के कहने का ढंग ही और है। 'अंदाजे बयां और'! जिसने एक बार सुना, पकड़ा गया। जिसने एक बार आँख से आँख मिला ली, फिर भटक न पाया। जिसको बुद्ध की थोड़ी-सी झलक मिल गयी, उसका जीवन रूपांतरित हुआ।

बुद्ध सभी गुरुओं के पास गये। गुरु घबड़ा गये। क्योंकि यह व्यक्ति निश्चित प्रामाणिक था। जो उन्होंने कहा, वह इसने इतनी पूर्णता से किया कि उनको भी दया आने लगी, कि यह तो हमने भी नहीं किया है! कोई करता ही नहीं था, तब तक बात ठीक थी। इसपे दया आने लगी। इससे यह भी न कह सकते थे कि तुमने पूरा नहीं किया, इसलिए उपलब्ध नहीं हो रहा है। इसने पूरा-पूरा किया। उसमें तो रत्ती भर कमी नहीं रखी। गुरुओं ने हाथ जोड़ के कहा कि बस, हम यहाँ तक तुम्हें बता सकते थे, इसके आगे हमें खुद भी पता नहीं है।

सारे गुरुओं को बुद्ध ने चुका डाला। एक गुरु साबित न हुआ। तब सिवाय इसके कोई रास्ता न रहा कि खुद खोजें। और इसलिए बुद्ध की बातों में बड़ी ताजगी है, क्योंकि उन्होंने खुद खोजा। किसी गुरु से नहीं पाया था। किसी से सुन के नहीं दोहराया था। फिर खुद खोज पर निकले नितांत अकेले, बिना किसी सहारे के। शास्त्र धोखा दे गये, गुरु धोखा दे गये, सब पीछे हट गये, अकेला रह गया खोजी।

बुद्ध ने यह घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है। इसलिए एक ही राजपथ पर सभी नहीं जा सकते, सबकी अपनी पगडंडी होगी। इसलिए सद्गुरु तुम्हें रास्ता नहीं देता, केवल रास्ते को समझने की परख देता है। सद्गुरु तुम्हें विस्तार के नक्शे नहीं देता, केवल रोशनी देता है, ताकि तुम खुद विस्तार देख सको, नक्शे तय कर सको। क्योंकि नक्शे रोज बदल रहे हैं।

बुद्ध ने अपनी एक-एक वृत्ति को जांचा और पाया कि वृत्ति मन के सरोवर में उठी लहर है। वृत्ति का मतलब ही लहर होता है। वह मन का कँप जाना है। अगर मन निष्कंप रह जाय तो कोई वृत्ति पैदानहीं होती। अगर मन कँप गया, तो वृत्ति पैदा हो जाती है। फिर कोई फर्क नहीं पड़ता कि किस चीज से कँपता है।

'मन सभी प्रवृत्तियों का पुरोगामी है; मन उनका प्रधान है; वे मनोमय हैं। यदि कोई दोषयुक्त मन से बोलता है या कर्म करता है, तो दुख उसका अनुसरण वैसे ही करता है जैसे गाड़ी का चक्का खींचने वाला बैलों के पैर का।'

बुद्ध ने एक सूत्र पाया; जीवन में दुख है। हम भी जीवन में दुखी हैं। और जब हमें दुख पकड़ता है तो हम पूछते हैं, किसने दुख पैदा किया? कौन मेरा दुख पैदा कर रहा है—पत्नी, पति, बेटा, बाप, मित्र, समाज? कौन मेरा दुख पैदा कर रहा है—आर्थिक-व्यवस्था, सामाजिक-ढांचा? कौन मेरा दुख पैदा कर रहा है?

उर्दू में शब्द है बुद्ध के लिए बुत। बुत जो है, जिसका मतलब अब मूर्ति होता है, बुद्ध का ही बिगड़ा हुआ रूप है। इतनी मूर्तियाँ बनीं बुद्ध की कि बुद्ध शब्द बुत होके मूर्ति का ही पर्यायवाची हो गया। और इतना बड़ा मूर्तिभंजक कोई भी नहीं।

बुद्ध की तलवार तुम्हें काटेगी, तुम्हें खंड-खंड करेगी। तुम्हारी श्रद्धाओं, विश्वासों को तुम्हारी मान्यताओं को तोड़ेगी, ताकि तुम ही बचो तुम्हारी शुद्धता में, तुम्हारी परिपूर्ण निर्दोषता में, तुम्हारे क्वारेपन में। वही बच जाए जो काटा नहीं जा सकता, 'नैनं छिदंति शस्त्राणि' —जिसे छेदा नहीं जा सकता, जिसे जलाया नहीं जा सकता।

बुद्ध छेदेंगे और जलायेंगे, ताकि जो छेदा जा सकता है वह छिद जाए, जो जलाया जा सकता है वह जल जाए और फिर तुम बच जाओ तुम्हारी परिशुद्ध अवस्था में। वही वेदों का ब्रह्म है; महावीर का कैवल्य है; कपिल और कणाद का मोक्ष है; बुद्ध का वही निर्वाण है।

निर्वाण शब्द नकारात्मक है। निर्वाण का अर्थ होता है दीये को फूंक कर बुझा देना। एक दीया जल रहा है, अंधेरी रात है; तुमने फूंक मारी और दीया बुझ गया; फिर तुम यह नहीं पूछते कि यह ज्योति कहाँ गयी? बुद्ध कहते हैं, ऐसा ही निर्वाण है। मैं चाहूँगा कि तुम फूंक मारो और अपने को बुझा दो और फिर मत पूछो कि कहाँ गये। खो गयी अनंत में, हो गयी एक 'एक' के साथ। मगर पूछो मत कहाँ गयी! निराकार के साथ एक हो गयी। मगर पूछो मत! कहने में बात बिगड़ जायेगी। चुप्पी और चुप्पी में समझ लो।

ऐसे, बड़े गहन बुद्ध के विश्लेषण और निषेध में हम उतरेंगे। अगर तुम हिम्मतपूर्वक बुद्ध के विश्लेषण में उतर जाओ, तो बुद्ध तुम्हें परम स्वास्थ्य की दशा में ला सकते हैं।

(हिन्दुस्तान, पटना, ८ मई, १९८९ अंक से साभार १—सं०)।

विश्व में कहीं भी कोई अशुभ हो, इसके लिए प्रत्येक उत्तरदायी है। अपने भाई से कोई अपने को पृथक् नहीं कर सकता। जो क्रियाएं विश्व से एकत्व स्थापित करें, वे पुण्य हैं और जो विभेद स्थापित करें, वे पाप हैं। तुम उस अनंत के ही एक अंश हो। यही तुम्हारा स्वभाव है। अतः तुम अपने भाई के रक्षक हो।

जीवन का प्रथम लक्ष्य है ज्ञान तथा दूसरा लक्ष्य है सुख। ज्ञान तथा सुख मुक्ति की ओर ले जाते हैं। परन्तु जब तक हर प्राणी (चींटी या कुत्ता भी) मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक कोई भी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। जब तक सभी सुखी नहीं हो जाते, कोई भी सुखी नहीं हो सकता। जब तुम किसी को क्षति पहुंचाते हो, तो अपने आपको ही क्षति पहुंचाते हो, क्योंकि तुम और तुम्हारा भाई एक ही है। —स्वामी विवेकानन्द

संस्मरण

श्रीमाँ सारदा देवी के संस्मरण (२)

— स्वामी अपूर्वानन्द
अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम, वाराणसी

उस दिन जयरामबाटी में अन्य कोई भक्त उपस्थित नहीं था। रात में माँ कुछ दूर पर खड़ी रहकर मेरा खाना देख रही थीं। दिनभर मेरा कुछ खाना नहीं हुआ, इस भावना से उन्होंने अति यत्नपूर्वक मुझे खिलाया। शुभ प्रभात की प्रतीक्षा में अधीरतापूर्वक अनिद्रा में ही रात बितायी। सुबह तालाब में स्नान कर माँ की बुलाहट की प्रतीक्षा में बैठा था। दीक्षा के लिए क्या तैयारी करनी चाहिए, जानता नहीं था, किसी से पूछा भी नहीं था, साथ में रुपये-पैसे भी कुछ नहीं थे। लगभग आठ बजे सेवक महाराज बुलाकर श्री श्री माँ के पूजागृह में ले गये तथा दरवाजा बन्द कर चले गये। माँ पूजा के आसन पर बैठकर पूजा कर रही थीं - पास में और भी एक आसन था। माँ ने मुझे श्री श्री ठाकुर को प्रणाम कर उस आसन पर बैठने को कहा। बैठते ही मेरे हाथों में उन्होंने गंगाजल दिया, पूरे अंग पर गंगाजल छिड़ककर सिर तथा देह पर हाथ फेरा। माँ के स्पर्श से रोमांच होने लगा, अन्तर एक अव्यक्त अनिर्वचनीय आनन्द से भर गया। कुछ क्षणों तक आँखें मूँदकर माँ ने बैठे-बैठे पूछा—"तुम्हें ठाकुर (श्रीरामकृष्णदेव) क्या अच्छे लगते हैं?" सम्मति देते ही उन्होंने तीन बार एक मंत्र का उच्चारण कर मुझे भी साथ-साथ उच्चारण करने को कहा। अचानक पास की दीवार की ओर हाथ बढ़ाकर उन्होंने कहा—"यही, यही हैं तुम्हारे इष्टदेवता।" उसी क्षण उस तरफ आँखों को चौंधियादेनेवाला उज्ज्वल आलोक उद्भासित हो उठा एवं उसमें उद्भासित हो उठी एक देवी मूर्ति—जीवन्त तथा ज्योतिर्मयी—जो मेरी ओर सस्नेह निहार रही थीं। मुहूर्त भर में मानो क्या का क्या हो गया! मैं आत्मविस्मृत तथा विह्वल हो गया। मात्र कुछ सेकेन्डों में ही सब घट गया। माँ का रूप भी उस समय अन्य प्रकार का था। कुछ ही देर बाद माँ ने स्नेह भरे स्वर में कहा - "बेटा, क्या तुम डर गये थे?" मैं सिर झुकाकर मौन रहा। उत्तर देने की सामर्थ्य नहीं थी। तत्पश्चात् माँ ने जप करने की विधि बतला दी। माँ बोल रही थीं, किन्तु मैं न जाने कैसा हो गया था! माँ बार-बार ऊँगली स्पर्श कर मंत्र का उच्चारण करते हुए जप की विधि बताने लगीं, मुझे भी साथ मंत्र का उच्चारण करने को कहा। वैसा ही किया। तत्पश्चात् ठाकुर को दिखाते हुए माँ ने कहा —"ठाकुर को प्रणाम करो, वे ही तुम्हारे इष्ट-देवता हैं, वे ही तुम्हारे गुरु, तुम्हारे इहकाल, परकाल सर्वस्व हैं। ठाकुर ही सर्वदेवदेवी स्वरूप हैं।" मैंने ठाकुर को प्रणाम कर माँ को भी प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन्होंने कितना जप करना होगा, यह भी बताया तथा ध्यान के संबंध में कई उपदेश दिये। माँ क्या हैं या कौन हैं—उस समय कुछ समझ नहीं पाया था, अभी भी कुछ नहीं जानता, किन्तु उस समय लगा था—वे संकल्प मात्र से ईश्वरदर्शन करा सकती हैं।

माँ के पूजा के आसन के पास दो फल रखे थे, उसे हाथों में लेकर कहा—"फल मेरे हाथों में दो।" मैंने वैसा ही किया। शायद यह गुरुदक्षिणा थी। मैं अपने साथ कुछ नहीं ले गया था - फल-फूल रुपया-पैसा कुछ भी नहीं। मेरा पूरा शरीर काँप रहा था।

माँ को पुनः प्रणाम किया। उन्हें इतने निकट पाकर बहुत हर्ष हो रहा था, बहुत अच्छा लग रहा था। माँ ने सस्नेह कहा—"अब कमरे में जाकर बैठो और जैसा दिखा दिया है, ठीक उसी प्रकार कुछ देर जप करो।

बाद में जलपान करना।"

× × ×

शाम को फिर से माँ के पास गया—वे बरामदे में मिट्टी के बरामदे पर पैर फैलाये बैठकर सब्जी काट रही थीं। उन्होंने कहा कि बाँकुड़ा के बैकुण्ठ महाराज की दवाई से लाभ हुआ है—आमवात कुछ कम हुआ है। इधर-उधर की बातचीत के बाद उन्होंने पूछा कि दुर्भिक्ष—सेवाकार्य किस प्रकार किया जाता है। बातचीत से पता चला कि दुर्भिक्ष पीड़ितों के लिए उनका हृदय अत्यन्त कातर हुआ है। किस प्रकार घर-घर में जाकर गरीबों को टिकटें दी जाती हैं, किस प्रकार उनके अभाव तथा निर्धनता के बारे में खोज ली जाती है, टिकट पाकर वे लोग किस प्रकार चावल ले जाते हैं, महिलाओं को कुछ-कुछ कपड़े दिये जाते हैं, इत्यादि बातों के क्रम में माँ को मैंने एक घटना सुनायी, जिसने माँ के हृदय को अत्यन्त व्यथित कर दिया। मैंने कहा कि एक दिन सुबह एक गाँव में खोज करने पर पता चला कि जो लोग चावल ले रहे थे उनमें से कोई घर पर नहीं है। समझा कि काम करने के लिए गये हैं। काम मिलने पर चावल नहीं दिया जाता था। अतः उनकी खोज में निकल पड़ा। देखा कि गाँव के बाहर एक धान के खेत में घुटने भर कीचड़ में कई लोग रोपनी कर रहे हैं। उस तरफ आगे बढ़ते ही दूर से देखा कि एक औरत खेत से निकलकर रोपनी करने के लिए रखे चारे के ढेर के पीछे जाकर छिप गयी। पूछने पर पता चला कि पिछली रात को उस औरत ने एक शिशु को जन्म दिया है, उसे लेकर ही वह काम करने आयी है। उस शिशु को एक कपड़े में लपेटकर उसे खेत के किनारे रखकर वह पेट भरने के लिए रोपनी कर रही है। खेत में काम कर रही है, यह बात पता लगने पर वह हमलोगों के पास से चावल नहीं पायेगी, सोचकर वह मुझे दूर से देखकर छिपने का प्रयत्न कर रही थी। यह बात सुनकर मेरा मन विचलित हो गया—यह सोचकर कि किस परिस्थिति में पड़ने पर पिछली रात को ही जन्मे शिशु को लेकर एक माँ खेत में काम पर आ सकती है, मन में धक्का लगा। मैंने उस औरत के पास जाकर अवरुद्ध स्वर में इतना ही कहा—"नहीं माँ, तुम्हारा चावल का हिस्सा नहीं काटूँगा।" इसी से उसने साहस पाकर हाथ जोड़कर कहा—"बाबू जी, बड़े कष्ट में पड़ी हूँ। इसीलिए खेत पर काम करने आयी हूँ।' खेत में काम करने से उसे एक दिन में दो सेर धान मिलता था।

श्री श्री माँ इस घटना को सुनकर आतंक से सिहर उठीं। आर्द्र स्वर में उन्होंने कहा—"कहते क्या हो? ऐसी गर्भवती महिला कार्य करने आयी थी! ऐसी अवस्था में क्या रोपनी का कार्य किया जाता है! अच्छा किया बेटा। ठाकुर तुम्हारा कल्याण करेंगे।"उसके बाद ठाकुर को उन्होंने मानो अभिमान के स्वर में प्रार्थना की—"ठाकुर! क्या तुम देख नहीं पाते? लोगों की ऐसी दुर्दशा! इस प्रकार से लोग कैसे जीवन-यापन करेंगे! कोई रास्ता निकालो', माँ के कंठ का कातर स्वर अभी भी मानो कानों में झंकृत हो रहा है। माँ थीं मूर्तिमती करुणा तथा आवेगपूर्ण थी उनकी प्रार्थना।

उन्होंने सेवा कार्य के बारे में छोटी-मोटी सब बातें पूछीं---हमलोग क्या खाते हैं, कैसे रहते हैं, क्या-क्या कार्य करना पड़ता है, इत्यादि। मैंने कहा---"एक दिन काम देखने के लिए गाँव के बाहर गया था। एक पहाड़ी छोटी सी नदी को, जो २०-२५ फुट चौड़ी थी तथा जिसमें घुटने भर पानी था, पैदल चलकर पार किया। कुछ देर तक जोरों की बारिश हुई। लौटते समय देखा कि वह नदी लाल रंग के पानी से भरी हुई है और भीषण वेग से बह रही है। सूर्य भी ढल रहा था। नदी पार करने का और कोई उपाय न देखकर पहने हुए वस्त्रों को सिर में लपेटकर, एक हाथ से छाता पकड़कर मात्र कौपीन पहनकर नदी में कूद पड़ा तथा एक हाथ से तैरते-तैरते स्रोत में बहते हुए किसी प्रकार दूसरे किनारे पहुँचा। बहुत दूर तक मैं बह गया था। नदी के किनारे कँटीली झाड़ियों के कारण जीवन संकट में

पड़ा गय था।" इस घटना को सुनते-सुनते माँ का चेहरा पीड़ा से म्लान हो गया। उन्होंने करुण स्वर में कहा---"बेटा, ठाकुर ने तुम्हारी रक्षा की थी। उस कँटीली झाड़ियों में एकबार घुस जाने पर तुम निकल नहीं सकते थे। बेटा, ऐसा कभी मत करना।" मेरा सभी दुःख माँ मे अन्तर से अनुभव किया था। उनका मातृ हृदय सन्तान के दुःख से उद्वेलित हो उठा था। अभी भी आपद-विपद में माँ की वह सावधान वाणी मन में साहस लाती है।

बातचीत के क्रम में दूसरे दिन कामारपुकुर दर्शन की इच्छा प्रकट करने पर माँ ने अनुमति नहीं दी। उन्होंने कहा--'नहीं बेटा, अभी कामारपुकुर मत जाओ, बाद में कभी जाना। यहाँ किसी प्रकार तीन रातें बिता दो। यह भयंकर मलेरिया का समय है—घर-घर में बुखार है। इस समय किसी को यहाँ आने के लिए नहीं कहती। केवल तुम्हें अनुमति दो क्योंकि तारक ने तुम्हें भिजवाया है।"

माँ का निर्देश मान लिया। बहुत समय बाद, सन् १९३६ में कामारपुकुर दर्शन किया, जयरामबाटी भी गया। माँ जिस कमरे में रहती थीं, जहाँ बैठती थीं जिस पूजागृह में दीक्षा देती थीं, उन सब स्थानों के दर्शन किये तथा वहाँ प्रणाम निवेदित किया।

× × ×

मेरे पास रुपया पैसा कुछ नहीं था, गुरुदक्षिणा भी न दे पाया, गुरुसेवा का भी कोई अवसर नहीं मिला—यह सब सोचकर मन में अशांति थी। दूसरे दिन जब सुना कि माँ के सेवक वरदा महाराज कोतुलपुर बाजार जा रहे हैं, मैं भी माँ को प्रणाम कर उनके साथ बाजार गया। लगभग तीन मील का मैदान का रास्ता कीचड़ से भरा था। वरदा महाराज ने उस बाजार से एक टोकरी अनाज तथा अन्य सामन खरीदे। मैंने माँ के लिए एक थाली मिश्री खरीदी तथा दोपहर को कोयल-पाड़ा आश्रम में खा-पीकर शाम को वह टोकरी सिर पर ढोकर जयरामबाटी लौट आया। उस टोकरी में माँ के व्यवहार की चीजें थीं—उन्हें ढोकर लाना भी तो माँ की ही सेवा थी।

जयरामबाटी पहुँचकर मैंने जो थाली लायी थी उसे माँ को देते ही उन्होंने दोनों हाथों को बढ़ाकर उसे ले लिया एवं प्रसन्न होकर कहा—"अच्छा किया बेटा, मैं प्रत्येक दिन मिसरी का शरबत बनाकर पीऊँगी" मेरे नेत्रों में आँसू आ गये। मात्र पाँच आने की मिसरी—माँ ने कितने आदरपूर्वक ग्रहण किया। माँ की सेवा तो कुछ भी नहीं कर पाया था। अतएव संध्यापूर्व जब देखा कि पुण्यपुकुर के किनारे हरिप्रेम महाराज बैंगन के पौधे लगाने के लिए मिट्टी खोद रहे हैं, तब मैंने उनके हाथों से कुदाल लेकर जीमन तैयार कर उनके साथ बैंगन के पौधे लगाये, यह सोचकर कि बैंगन जब फूलेंगे तब माँ की सेवा में लगेंगे।

इसी प्रकार तीन रातें बीत गयीं। चौथे दिन शाम को माँ को प्रणाम कर विदा लेने गया। प्रणाम करते ही उन्होने मेरी ठोढ़ी पकड़कर चुम्बन किया। मैंने बालबुद्धिवश घुटने टेककर हाथ जोड़कर रोते-रोते कहा—"माँ मुझे याद रखना" इस प्रकार मैंने तीनबार प्रार्थना की। उन्होंने भी प्रत्येक बार कहा—"हाँ बेटा, याद रखूँगी।" वे मुझे याद रखेंगी यह सोचकर मेरा मन आनन्द से भर गया और कुछ भी बोलने की इच्छा नहीं हुई। पुनः माँ को प्रणाम कर उनकी ओर देखते हुए पीछे की ओर जाते-जाते मुख्य दरवाजे तक आया—माँ उतनी देर तक मेरी ओर निहार रही थीं। अंतिम बार माँ को पुनः देखकर दरवाजे के बाहर आया तथा माँ का करुणापूर्ण श्रीमुख तथा उनकी बातों को सोचते-सोचते लगभग तीन मील चलकर कोयलपाड़ा आश्रम में पहुंचा। मैंने माँ के पास भक्ति-मुक्ति की प्रार्थना नहीं की। यह विचार भी मन में नहीं आया।

माँ को पाने से ही तो मानो सब मिल गया। उनकी कृपा रहने से ही सब कुछ हो गया। यद्यपि मैं संसार की चक्की में पिसकर, धूल, कीचड़ में सनकर माँ को भूल सकता हूँ किन्तु माँ यदि मुझे याद रखें तो सत्पथ पर

निश्चय चल सकूँगा। माँ यदि याद रखकर गोद में उठा लें, गोद में ही रखें, संसार की कालिमा शरीर में न लगने दें तभी तो मैं निर्मल सुन्दर हो सकूँगा। इस प्रकार सोचकर मैंने माँ से केवल एक ही प्रार्थना की थी —"माँ, मुझे याद रखना।" तीन बार मैंने यह प्रार्थना की और तीनों बार उन्होंने अभय देकर कहा "हाँ बेटा, तुम्हें याद रखूँगी।" बाद में सेवक वरदा महाराज से सुना था - मेरे चले आने के बाद माँ ने उन्हें बुलाकर कहा था—"देखो तो लड़के ने तीन बार कहलाकर शपथ करा ली।" माँ के श्रीमुख से जो निकलेगा उसे सत्य होने में क्या सन्देह! तीन बार बोलकर उन्होंने शपथ ली थी कि वे मुझे भूलेंगी नहीं – यही है मेरे जीवन की परम शांति, परम आशीर्वाद, परम अभय, बल, भरोसा तथा सान्त्वना।

कोयलपाड़ा आश्रम में रात बिता कर तड़के सुबह वर्षा के समय कोतलपुर होकर विष्णुपुर के लिए रवाना हुआ। साथ में छाता न होने की वजह से जोड़ों की बारिश होने पर पेड़ों का आश्रय लेते हुए कीचड़ के रास्ते से चौबीस मील पार कर संध्यापूर्व जब विष्णुपुर पहुँचा तो मैं थकान से चूर हो चुका था।

सेवाकेन्द्र में पहुँचने की खबर देते हुए श्री श्रीमाँ को पत्र दिया उसमें मैंने कोयलपाड़ा से विष्णुपुर तक की चौबीस मील की यात्रा के कष्ट की बात लिखी थी। श्री श्री माँ उस पत्र को पाकर अत्यन्त चिन्तित हुई थीं। सेवक वरदा महाराज ने मुझे लिखा था—माँ को क्या इस प्रकार रास्ते के कष्ट की बात लिखनी चाहिए थी? वे अत्यन्त उद्विग्न हुई हैं, इत्यादि। यह जानकर कि मेरा पत्र पाकर माँ चिन्तित हुई हैं, मुझे पश्चाताप नहीं हुआ, बल्कि यह सोचकर प्रसन्न हुआ कि माँ ने मेरे लिए चिन्ता की है। साथ ही मैं उस मलेरिया रोग के समय भी स्वस्थ था। लड़के के लिए माँ चिन्ता नहीं करेगी तो भला कौन करेगा?

सन् १९२० ई० की बात है। महापुरुष महाराजके पत्र से पता चला कि श्री श्रीमाँ गम्भीर रूप से अस्वस्थ हैं। इस समाचार को पाने के बाद मन बेचैन हो उठा। मठ लौट जाने की अनुमति के लिए महापुरुष महाराज को मैंने पत्र दिया। उत्तर में अनुमति के साथ भाड़े का पैसा भिजवाते हुए लिखा कि और कुछ दिन वहाँ रहने से स्वास्थ्य के लिए अच्छा रहता। किन्तु श्री माँ के दर्शन की जब तीव्र इच्छा हुई है तो वापस आ सकते हो।

कुछ दिनों के बाद ही मठ वापस आकर दूसरे ही दिन श्री श्रीमाँ के दर्शन के लिए माँ के घर गया किन्तु माँ का स्वाथ्य बहुत खराब होने के कारण दर्शनादि बन्द था। फिर भी मठ से गया था इस कारण पूजनीय शरत् महाराज की विशेष अनुमति से केवल दूर से दर्शन तथा प्रणाम करके माँ के स्वास्थ्य के सब समाचार जानकर मजबूर होकर मठ लौट आया। माँ को चरणस्पर्श कर प्रणाम नहीं कर पाया और ना ही माँ के साथ बातचीत ही हो पायी; यह सब सोचकर मन में दुःख हुआ। जयरामबाटी में माँ को देखा था, उनके निकट बैठकर बातचीत की थी, उन्हें चरणस्पर्श कर प्रणाम किया था—ये सारी बातें बार-बार याद आने लगीं।

माँ का स्वास्थ्य खराब होने के कारण महापुरुष महाराज प्रतिदिन एक व्यक्ति को माँ का समाचार पाने के लिए 'उद्बोधन' भेजते थे। मठ में उस समय फोन या विद्युत की व्यवस्था नहीं थी। माँ के भवन से लौटकर महापुरुष महाराज को प्रणाम करते ही उन्होंने माँ का समाचार पूछा। माँ के हाथ पाँव फूल गये थे, तथा खाने में अत्यन्त अरुचि थी। पूज्य शरत् महाराज ने कहा था कि कविराज महाशय ने पथ्य के रूप में श्वेत 'पुनर्नवा' शाक कहा है तथा अरुचि को दूर करने के लिए आमरूल साग को चटनी के रूप में खाने को कहा है। उसे सुनते ही महापुरुष महाराज ने कहा कि मठ के खेत में काफी पुनर्नवा हुआ है और आमरूल साग भी काफी है। तुम प्रतिदिन सुबह माँ के लिए पुनर्नवा तथा आमरूल साग ले जाना तथा माँ का समाचार भी ले आना। उनके कथनानुसार प्रतिदिन

तड़के कुछ अच्छा आमरूल साग केले के पत्ते में बांध लेता था और नौकर द्वारा गंगा को पारकर कुटीघाट से पैदल चलकर आठ बजे के पहले उद्‌बोधन भवन पहुंचकर वह साग सेवक महाराज के हाथ में देता था तथा दूर से श्री मां को प्रणाम कर मां का समाचार लेकर मठ पहुंचकर महापुरुष महाराज को देता था। महापुरुष महाराज तथा अन्य संन्यासीगण अत्यन्त व्यग्रचित्त से सब सुनते थे। इसी बहाने लगभग डेढ़ माह तक प्रतिदिन मां के दर्शन का सौभाग्य मिला था। सब से अधिक अचरज की बात यह थी कि उस डेढ़ माह की अवधि में दूर से प्रणाम करते समय प्रतिदिन देखता था कि मां जीर्ण देह से बरामदे के दरवाजे की ओर सिर रखकर जमीन पर सोयी हुई हैं और मैं जब प्रणाम करता तब वे सस्नेह दृष्टि से कातरतापूर्वक मुझे देखती थीं। आह! उस दृष्टि में कितनी ममता तथा करुणा थी। उन्होंने बातचीत नहीं की किन्तु दृष्टि के द्वारा करुणा का वर्षण किया, स्नेह ममता का स्पर्श दिया। उनके सम्मुख दृष्टिगोचर होते ही उस दृष्टि के माध्यम से उनके साथ मिलन होता—वे मेरे अन्तर को स्नेह से परिपूर्ण कर देतीं, एक अनिर्वचनीनय दिव्यानन्द से हृदय भर जाता। प्रणाम कर के घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़ कर मौन प्रार्थना करके जब लौट आता तब श्री श्रीमां के स्निग्ध सजल युगल नेत्रों से मानो करुणा का वर्षण होता और जितनी दूर से देखा जा सकता था. देखता कि मां अपलक नेत्रों से मेरी ओर ही निहार रही है।

उसी काल में एक दिन मां के भवन से लौटकर महापुरुष महाराज को प्रणाम करते ही उन्होंने मां के कुशल-मंगल समाचार पूछे तो मैंने चिकित्सा तथा पथ्यादि के बारे में बताकर जब यह कहा कि रात में उन्हें बिलकुल नींद नहीं हुई है और सम्पूर्ण देह में असाध्य ज्वाला के कारण छटपटा रही हैं—यह सुनते सुनते महापुरुष महाराज के नेत्र अश्रुपूर्ण हो उठे और कम्पित स्वर में उन्होंने कहा—"आह! सभी के पाप ग्रहण करने के कारण ही तो मां को इतनी तकलीफ है। इसीलिए तो सम्पूर्ण देह में उस विष की ज्वाला है। वे शत-शत सन्तानों के पाप को अपने भीतर लेकर सन्तानों को निष्पाप कर दे रही हैं। श्री श्री ठाकुर की कृपा तथा मां की कृपा एक ही है। श्री ठाकुर नरदेह त्याग करके अब श्री श्री मां के भीतर विराजमान हैं। जिन्होंने मां की कृपा पायी है उन लोगों का यह अंतिम जन्म है। मां, मां, भक्तों के लिए तुम कितने कष्ट सहन करती हो! एक दिन ठाकुर ने मुझे कहा था—"वह जो नौबत खाने में रहती है और भवतारिणी मां—ये दोनों एक ही हैं।" मैं क्या उस समय यह सब जानता था! उन्होंने जो कहा वह सुनकर आश्चर्यचकित हो गया था। जिसने मां का दर्शन किया है—वह मुक्त हो जायेगा। मां का दर्शन क्या कम सौभाग्य की बात है? यह कहते-कहते उनका स्वर अवरुद्ध हो गया।

मैंने तब रोते हुए कहा—"मां का दर्शन तो प्रतिदिन करता हूं किन्तु मां के मुख से एक बात भी सुन नहीं पाता हूं। मेर मन में केवल यही उठता है—"आह! यदि मां एक भी बात बोलतीं।

महापुरुष महाराज ने अत्यन्त आवेगपूर्ण स्वर में कहा—"मां जो तुम्हारी ओर निहारती हैं वही तो उनका आशीर्वाद है। वे कृपा दृष्टि से तुम्हें देखती हैं। तुम्हारा जीवन धन्य हो गया है। मां की कृपा पायी है—तुम्हारे इस जीवन के लिए यही पर्याप्त है। अभी उनका स्वास्थ्य इतना खराब है, भला किस प्रकार तुम्हारे साथ बातें करेंगी? वे इतनी दुर्बल हैं कि बात करने की शक्ति ही तो नहीं है। स्वस्थ हो जाने पर वे तुम्हारे साथ बातें करेंगी।" महापुरुष महाराज की यह शुभेच्छा एक अलौकिक रूप से अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई थी।

देह त्याग की रात भी श्री श्रीमां ने दिव्य देह से ज्योतिर्मय रूप में मुझे अंतिम आशीर्वाद दिया था। २० जुलाई, १९२० ई०। प्रतिदिन जिस प्रकार सोता था उसी प्रकार सोया था। रात में लगभग डेढ़ बजे अद्‌भुत रूप से श्री मां का दर्शन हुआ। असाधारण था वह दर्शन। श्री श्री मां को ज्योतिर्मयी मूर्ति के रूप में देखा। वे सस्नेह मेरी ओर निहार रही थीं। मधुस्वर में बुलाकर मुझे कहा—'बेटा मैं जा रही हूं।" इस अद्‌भुत दर्शन का मर्म मैं बिल्कुल समझ नहीं पाया। जब मां के देह त्याग का मर्मान्तिक समाचार मिला तब समझ में आया। मां ने 'उद्‌बोधन' भवन में अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया था—प्रायः उसी समय जब मैंने उनका दर्शन पाया था। □

संस्मरण

स्वामी विशुद्धानन्द महाराज की चार स्मृतियाँ

--स्वामी आत्मस्थानन्द
सह सचिव, रामकृष्ण मठ-मिशन
बेलुड़ मठ

पूजनीय विशुद्धानन्दजी महाराज थे श्री माँ की सन्तान। वे रामकृष्ण मठ व मिशन के अष्टम अध्यक्ष थे। मैं उनका स्नेह पाकर धन्य हो चुका हूँ। मुझे उनका अपार स्नेह मिला। उनकी सेवा करने के कुछ अवसर भी मुझे मिले। एक बार जब मेरा मन काफी व्याकुल था, उन्होंने मुझे सान्त्वना प्रदान की और समयानुसार उन्होंने शासित भी किया।

विशुद्धानन्द महाराज के बारे में मैं यहाँ चार बातें कहूंगा—

(१) विशुद्धानन्दजी महाराज अक्सर एक बात कहा करते थे—"पहले रामकृष्ण, बाद में मिशन"। रामकृष्ण को छोड़ कर मिशन का कोई अर्थ नहीं बनता। श्रीरामकृष्ण को पकड़ कर ही मिशन को चलना होगा।"

(२) मैं उस समय राँची सेनिटोरियम में था। कार्य हेतु एकबार कलकत्ता आया। राँची में हमारे पास "बाघा" नाम का एक कुत्ता था। बहुत दिन बाहर रहने के उपरान्त, विशुद्धानन्द महाहाज को लेकर मैं राँची लौटा। लौटने पर पाया कि बाघा बहुत दुबला हो गया है।

महाराज ने बाघा के शीर्ण हो जाने का कारण पूछा। मैंने उत्तर दिया: "मैं नहीं था। अपने खाने में से मैं उसे बर्फी, दूध, भात आदि देता था। चूंकि मैं नहीं था इसीलिए शायद किसी ने कुछ दिया नहीं।" सुनकर महाराजजी दुःखी हो उठे। सब साधु ब्रह्मचारियों को कहने लगे: "तुम सब इतने लोग यहाँ रहते हो। एक प्राणी को खाने के लिए कुछ नहीं मिलता! कोई इसे थोड़ा दूध नहीं पिला पाये!" बाद में, जब तक महाराज सेनिटोरियम में रहे, अपने हिस्से की बर्फी बाघा को रोज दे दिया करते। और बाघा भी रोज ठीक समय पर उपस्थित होकर महाराजजी से बर्फी का टुकड़ा लेकर मुँह नीचा कर आनन्द से कूदता-फांदता लौट जाता था। यह थी विशुद्धानन्द महाराजजी की बाघा के प्रति प्रीति। इस प्रीति ने मेरे मन में गहरी छाप छोड़ी।

(३) पूजनीय विशुद्धानन्दजी महाराज एक सूप-सा या "झोल" पीते थे। उसमें मिर्च, तेल, मसाला आदि कुछ नहीं डाला जाता था। स्वादहीन 'झोल'। इसको वे 'निराकार झोल' कहते थे। वे इस 'निराकार झोल' को प्रसन्न भाव से पीते थे।

(४) मैं तब पूजनीय विरजानन्द महाराजजी की सेवा करता था। मठ में ही रहता था। विरजानन्दजी महाराज मठ गृह में ही रहते थे जिस कमरे में पूजनीय सूर्य महाराज—स्वामी निर्वाणानन्दजी महाराज रहते थे। विशुद्धानन्दजी महाराज उसी मकान में पूजनीय खोका महाराज के कमरे (स्वामीजी का कमरा एवं अब जिसमें पूजनीय भरत महाराज रहते हैं उसके अगले कमरे में) में रहते थे। विरजानन्दजी महाराज की सेवा से मुझे बिल्कुल भी समय नहीं मिलता

या ताकि मैं श्री ठाकुरजी के मन्दिर में बैठ कर जप-ध्यान करूँ या सन्ध्या आरती में योगदान दूँ। मन व्यथित रहता था। पूजनीय विशुद्धानन्दजी महाराज को एक दिन मैंने मन की बात कह ही डाली। पूजनीय महाराजजी ने जो उत्तर दिया, वह आज भी मेरे मन पर उतरा हुआ है। "तूने कालीघाट की गंगा देखी है?" "जी हाँ, बहुत ही गंदा जल है, नहाना कठिन है। किसी तरह एक डुबकी लगाकर आ जाना पड़ता है।"— मैंने उत्तर दिया। "ठीक वैसे ही जो सो करके सब काम कर लेना होगा, डुबकी लगानी होगी"—विशुद्धानन्दजी महाराज ने कहा था।

(*प्रस्तुत संस्मरण बंगला भाषा में प्रकाशित उद्‌बोधन पत्रिका के दिसम्बर, १९८८ अंक में प्रकाशित हुआ था। वहीं से इसे साभार ग्रहण किया गया है। अनुवादक हैं रामकृष्ण मिशन, कानपुर की कार्यकारिणी के सदस्य डॉ० कल्याण शंकर भट्टाचार्य—सं०)

सूचना

हमे यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि बेलुड़ मठ में एक पुरालेखागार (आर्काइव) एवं संग्रहालय (म्यूजियम) प्रारम्भ किया गया है, जिसे अनतिदूर भविष्य में वर्तमान मुख्य कार्यालय भवन में, उसकी आवश्यक मरम्मत और नव सज्जा के बाद, स्थापित किया जा रहा है।

श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द एवं श्रीरामकृष्ण के अन्य लीला-सहचरों के द्वारा उपयोग में लाये गये वस्त्र, घड़ियाँ, जूते, उनके पत्र, लेखों की पाण्डुलिपियाँ, व्यक्तिगत दैनन्दिनियाँ, पुस्तकें और उन्हें भेंट किये गये सम्मान-पत्र आदि इस संग्रहालय में सुरक्षित रखे जाएंगे। साथ ही माँ सारदा एवं श्रीरामकृष्ण के इन शिष्यों के चरणों की छापें भी सुरक्षित रखी जाएंगी।

जिन भक्तों और मित्रों के पास ऊपर बतायी गयी वस्तुओं में से कुछ भी हों, उनसे साग्रह अनुरोध है कि वे उन वस्तुओं को बेलुड़ मठ के अधिकारियों को कृपया सौंप दें, जिससे वे वैज्ञानिक तरीके से सुरक्षित रखी जा सकें तथा इस पीढ़ी के ही नहीं बल्कि आनेवाली सैकड़ों पीढ़ियों के भक्तों और जन साधारण के लाभ के लिए उनका प्रदर्शन किया जा सके।

महासचिव
रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलुड़ मठ
जि० हावड़ा—७११ २०२
(प० बंगाल)

स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

११. प्रो० विलियम जेम्स

मैं अभी-अभी विवेकानन्द के इंग्लैण्ड में दिये हुए व्याख्यान पढ़ रहा था, जो अब तक मेरी निगाह में नहीं आये थे। वे वाग्विदग्धता के एक चमत्कार हैं। जहाँ तक अद्वैत-सिद्धान्त का प्रश्न है, मैंने इस विषय पर मिस नोवल के साथ बड़ी रोचक चर्चा शुरू की थी, पर बीच में ही बाधा आ गयी और मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरी कठिनाइयाँ अभी तक दूर नहीं हुई हैं। जो भी हो, स्वामीजी मानवजाति के लिए एक सम्माननीय व्यक्ति हैं। ....

पूर्ण ज्ञानी के लक्षणों का स्पष्ट रूप से वर्णन करना इतना असम्भव है कि हमें यह मान लेना होगा कि परम अद्वैतवाद बौद्धिक की अपेक्षा अतीन्द्रिय भूमि पर प्रतिष्ठित है और सम्भवतः यह सर्वदा कुछ लोगों को अभिभूत किए रहेगा। परम अद्वैतवाद की ठीक-ठीक व्याख्या करने के लिए हमें अतीन्द्रियवादी बनना होगा। इतिहास हमें यह दिखाता है कि मन की इन्द्रियातीत अवस्थाएँ, सदा नहीं तो प्रायः ही, हमें अद्वैतवादी दृष्टिकोण तक पहुँचाती हैं। .... सभी अद्वैतवादी सिद्धान्तों में हिन्दुस्तान का वेदान्त-दर्शन ही श्रेष्ठ है और वेदान्त-प्रचारकों के मूर्तिमंत आदर्श थे ब्रह्मलीन स्वामी विवेकानन्द, जो कुछ वर्ष पूर्व ही हमारे देश (अमेरिका) में आये थे। वेदान्त की पद्धति अतीन्द्रिय अनुभूति की पद्धति है। उसमें युक्ति की आवश्यकता नहीं, बल्कि एक विशिष्ट प्रकार की साधना करने पर आपको अनुभूति होती है और तत्पश्चात् आप सत्य निरूपण कर सकते हैं। विवेकानन्द यहाँ पर दिये अपने एक व्याख्यान में सत्य का निम्न शब्दों में वर्णन करते हैं—

'जो जगत् में, जीवन में और सब कुछ में इस एकत्व का दर्शन करता है, उसके लिए भला दुःख कहाँ रह जाता है? .... यह धारणा कि मनुष्य-मनुष्य से भिन्न है, पुरुष और नारी भिन्न हैं, युवा और शिशु भिन्न हैं, राष्ट्र-राष्ट्र से भिन्न है, पृथ्वी चन्द्रमा से पृथक् है, चन्द्र सूर्य से पृथक् है, एक परमाणु दूसरे परमाणु से पृथक् है—यह बोध ही वस्तुतः समस्त दुखों का कारण है। वेदान्त कहता है कि यह भेद वास्तविक नहीं है। यह भेद केवल भासित होता है, ऊपर से दीख पड़ता है। वस्तुओं के अन्तस्तल में वही एकत्व विराजमान है। यदि तुम भीतर जाकर देखो, तो इस एकत्व को देखोगे—मनुष्य-मनुष्य में एकत्व, नर-नारी में एकत्व, ऊँच-नीच में एकत्व, धनी और दरिद्र में एकत्व, देवता और मनुष्य में एकत्व। सभी तो एक हैं। और यदि और भी गहराई में जाओ, तो देखोगे—अन्य प्राणी भी एक ही हैं। जो इस प्रकार एकत्वदर्शी हो चुके हैं, उनको फिर मोह नहीं रहता। ... उनको अब मोह कैसे रह सकता है? मोह उनको होगा ही कैसे? उन्होंने सभी वस्तुओं का आभ्यन्तरिक सत्य जान लिया है, सभी वस्तुओं का रहस्य जान लिया है। उनके लिए अब दुःख कैसे रह सकता है? वे अब किसकी कामना-वासना करेंगे? वे सारी वस्तुओं के अन्दर वास्तविक सत्य की खोज करके ईश्वर तक पहुँच गये हैं, जो जगत् का केन्द्रस्वरूप है, जो सभी वस्तुओं का एकत्वस्वरूप है। वही अनन्त सत्ता है, वही अनन्त ज्ञान है, वही अनन्त आनन्द है। वहाँ मृत्यु नहीं, रोग नहीं, दुःख नहीं, शोक नहीं, अशान्ति नहीं। .... वस्तुतः उस केन्द्र में, उस परम सत्य में मृत्यु नहीं है, दुःख नहीं है। वह सर्वत्र ओत-प्रोत है, शुद्ध है, निराकार है, देहरहित है, निष्पाप है, वह ज्ञाता है, वह महान् कवि है, स्वयम्भू है, वह

यथायोग्य सभी की काम्य वस्तुओं का विधान करता है।'

देखिए, यहाँ अद्वैतवाद का स्वरूप कितना विलक्षण है। एकत्व के द्वारा न केवल विभेद का निराकरण किया जाता है, अपितु उसके अस्तित्व से ही इन्कार किया जाता है। बहुत्व है ही नहीं। हम एक के अंश नहीं हैं, क्योंकि वह अविभाज्य है; और चूँकि हम लोगों का अस्तित्व निर्विवाद है, हम में प्रत्येक वही अविभाज्य तथा पूर्ण 'एक' है। एक पूर्ण 'एक' और वही मैं हूँ - निश्चित रूप से यहाँ हमें एक ऐसा धर्म प्राप्त होता है जिसका भावनात्मक दृष्टि से एक उच्च व्यावहारिक मूल्य है; यह हमें एक पूर्ण सुरक्षा का वैभव प्रदान करता है। जैसा कि हमारे स्वामीजी एक अन्य स्थान पर कहते हैं—

'जब एक बार मनुष्य अपने आप को विश्व की अनन्त सत्ता के साथ एकीभूत कर लेता है, जब सारा भेदभाव नष्ट हो जाता है, जब समस्त नर, नारी, देवदूत, देवता, पशु, वनस्पति और सारा जगत् उस एकत्व में विलीन हो जाते है, तब सम्पूर्ण भय लुप्त हो जाता है। फिर भय हो भी तो किससे ? क्या मैं अपने आपको चोट पहुंचा सकता हूँ ? स्वयं की हत्या कर सकता हूँ ? स्वयं पर आघात कर सकता हूँ ? क्या तुम अपने आप से भयभीत हो सकते हो ? ऐसा भाव आने पर सारे दुःख विलीन हो जाएँगे। दुःख का कोई कारण ही नहीं रह जाता। मैं ही तो सम्पूर्ण विश्व की एकमात्र सत्ता हूँ। तब सारी ईर्ष्या दूर हो जाती है। ईर्ष्या करें भी तो किससे ? स्वयं से ? तब समस्त दुर्भावनाएँ दूर हो जाती हैं। किसके विरुद्ध दुर्भावना रखूँगा ? स्वयं के ? ब्रह्माण्ड में मेरे सिवा और है ही कौन ? ··· भेदभाव को नष्ट कर डालो, बहुत्व के अन्धविश्वास को समाप्त कर डालो। "जो अनेकता में एकता का दर्शन करता है, जो इस अचेतन जड़पिण्ड में एक ही चेतना का अनुभव करता है एवं जो इस छायामय जगत् में 'सत्य' को पकड़ लेता है केवल उसी को शाश्वत शान्ति मिल सकती है, अन्य किसी को नहीं, अन्य किसी को नहीं।"

यह अद्वैतवादी संगीत हमारा ध्यान थोड़ा-बहुत अवश्य ही आकृष्ट कर लेता है। यह हमें उन्नीत करता है, आश्वस्त करता है। हम सबमें अतीन्द्रियवाद का कम-से-कम बीज तो अवश्य ही विद्यमान है। जब हमारे आदर्शवादी लोग परमसत्ता के पक्ष में अपनी सारी युक्तियाँ दुहराते हुए बताते है कि उसमें स्वीकृत थोड़ी सी भी एकता, युक्ति की दृष्टि से भी पूर्ण एकत्व दर्शाती है; और युक्ति की दृष्टि से स्वीकृत थोड़ा सा भी विभेद बहुत्व की प्रतिष्ठा करता है, जो अपने-आप में पूर्ण है और जिनसे इन्कार नहीं किया जा सकता। तथापि मैं इस विषय में अपना सन्देह व्यक्त किए बिना नहीं रह सकता कि उनके द्वारा प्रयुक्त बौद्धिक युक्तियों में कुछ ऐसे स्पष्ट कमजोर स्थल हैं, जो उनके स्वतः के छिद्रान्वेषण से उनके इस अतीन्द्रियवादी अनुभूति के कारण बच जाते हैं कि यौक्तिक लगे या अयौक्तिक, हर दशा में पूर्ण एकत्व, ही सत्य है। यह एकत्व, जैसे भी हो नैतिक बिलगाव पर विजय प्राप्त कर लेता है। प्रेम के आवेग में सभी चेतन जीवों के पूर्ण एकत्व का मानो अतीन्द्रिय बीज निहित है। अद्वैतवादी वाणी को सुनकर हमारे भीतर छिपा अतीन्द्रिय बीज प्रस्फुटित हो उठता है, उनकी प्रामाणिकता को स्वीकार करता है और बौद्धिक दृष्टिकोण को एक गौण स्थान प्रदान करता है।

समाप्ति
याकुमारी के
बैठकर सर्वव्यापी
धारण करने वाले
वर्षों पहले उन्होंने
मुख से सुना था।

आत्मनोमोक्षार्थं जगद्धिताय च

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों का अध्ययन करने पर इन दोनों के बीच एक अन्तर सा दिखाई देता है। श्री रामकृष्ण के उपदेशों का सार है : ईश्वर है, तथा इश्वर दर्शन ही जीवन का उद्देश्य है। व्याकुल होकर पुकारने पर उनके दर्शन मिलते हैं। हम किसी भी मार्ग से क्यों न अग्रसर हों यदि आन्तरिकता हो तो हम अवश्य भगवान को प्राप्त करेंगे। फिर अन्य मार्गो की अपेक्षा भक्ति का मार्ग सरल है। कर्म-योग कठिन है। क्रियाकाण्ड एवं आडम्बरयुक्त वैदिक कर्मयोग आधुनिक युग के उपयुक्त नहीं है और निष्काम कर्म भी आसन नहीं है। हम सोचते हैं कि हम निष्काम कर्म कर रहे हैं पर न जाने कहाँ से अहंकार पुनः आ जाता है। अतः निवृत्ति ही अच्छी है। कर्म जितना कम किया जा सके उतना अच्छा है, एवं प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे हमारे कर्म कम कर दें। यदि कोई धनी व्यक्ति स्कूल, दवाखाना इत्यादि बनवाने की इच्छा व्यक्त करता, अथवा कोई उच्चतर नौकरी प्राप्त करने की कामना करता तो श्री रामकृष्ण उसे निरुत्साहित करते हुए यही कहते कि ईश्वर दर्शन ही जीवन का उद्देश्य है, तथा अन्यान्य वासनाओं को त्यागकर यथा संभव निर्जन में भगवान को पुकारना चाहिए।

अनुभूति स्वामी विवेकानन्द के पत्रों, वार्त्तालापों, भारत नहीं, बल्कि एक व्याख्यानों एवं कक्षालापों को पढ़ने पर आपको अनुभूति ह. श्री रामकृष्ण के उपदेशों से कुछ निरूपण कर सकते हैं। वे बार-बार राष्ट्र के उत्थान, एक व्याख्यान में सत्, जन समाज एवं नारी जाति करते हैं— ए भारतवासियों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए, अपने उपर्युक्त कथन को कार्य रूप देने के लिए उन्होंने श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना की एवं अपने गुरु-भाइयों एवं शिष्यों द्वारा राहतकार्य, अस्पताल एवं स्कूल-कालेज आदि प्रारम्भ करवाये।

गुरु श्री रामकृष्ण एवं उनके प्रमुख शिष्य श्री स्वामी विवेकानन्द के विचारों एवं कार्य पद्धति में इतना पार्थक्य दिखाई देता है कि यह शंका होने लगती है कि स्वामी जी ने अपने गुरु की शिक्षाओं को त्यागकर अपनी इच्छानुसार कुछ और तो नहीं सिखाया है? यह संशय हम और आप में ही नहीं, स्वयं स्वामी जी के गुरुभाइयों के मन में भी उठा था। एक बार स्वामी योगानन्दजी तो यह बात स्पष्ट ही स्वामी विवेकानन्द से पूछ बैठे थे। स्वामी अद्भुतानन्द एवं स्वामी प्रेमानन्दजी के मन में भी यह संशय बना हुआ था। स्वामी विवेकानन्द के प्रति अपनी अटूट श्रद्धा एवं गहरे प्रेम के कारण एवं यह जानकर कि स्वयं श्री रामकृष्ण ने उन्हें उन सभी का नेता नियुक्त किया है, सभी गुरु-भाइयों ने स्वामी जी द्वारा प्रवर्तित मठ स्थापन एवं सेवाकार्य में मनोनियोग एवं योगदान किया अवश्य था, लेकिन उपर्यक्त संशय कुछ लोगों के मन में स्वामी जी के देह-त्याग के कई वर्षों बाद तक बना रहा था। श्री रामकृष्ण वचनामृत के लिपिक मास्टर महाशय भी उन लोगों में से एक थे। सन् १८८९ में माँ सारदा वाराणसी आयी थीं, एवं वहाँ के रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई थीं। अपने अनुमोदन, सहायता एवं आशीर्वाद स्वरूप उन्होंने मिशन के सेवा-श्रम को एक दस रुपये का नोट प्रदान किया था। उनके

इस छोटे से कार्य ने रामकृष्ण मिशन के सेवा-कार्यों पर उत्कृष्टता एवं आध्यात्मिकता की मानो मुहर लगा दी थी। मास्टर महाशय उस समय वाराणसी में ही थे, एवं जब उन्हें माँ सारदा के अनुमोदन की बात बतायी गयी तो उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि मिशन के सेवा-कार्य श्रीरामकृष्ण के सन्देश के अनुरूप ही हैं, विरुद्ध नहीं।

इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए हमें स्वामी विवेकानन्द के सन्देश के क्रमिक विकास का अध्ययन करना होगा। श्री रामकृष्ण के त्याग, वैराग्य तथा भगवद्दर्शन के संदेश से प्रभावित होकर उन्होंने संन्यास-व्रत ग्रहण का निर्णय तो शुरू में ही कर लिया था लेकिन उसे कार्य में परिणत करने में उन्हें कुछ समय लगा। माता एवं छोटे भाई बहनों से युक्त उनका परिवार पिता की मृत्यु के बाद उनपर ही आश्रित था। आर्थिक स्थिति अत्यन्त विकट होने के कारण उनके संन्यास ग्रहण का अर्थ होता उनके भाई बहनों व माँ का भूखों मरना। ऐसी स्थिति में क्या उन्हें संन्यास लेना चाहिए? इस अन्तर्द्वन्द्व ने उन्हें तीव्र पीड़ा दी थी। उनके लिए यह एक परीक्षा का काल था। अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि श्री रामकृष्ण के उपदेशों को जीवन में उतारने से तथा उनके प्रसार एवं प्रचार से वृहत जगत् का कल्याण होगा, भले ही ऐसा करने में एक माता या दो एक भाई बहनों का बलिदान ही क्यों न करना पड़े।

श्री रामकृष्ण की महासमाधि के बाद स्वामी जी संन्यास ग्रहण कर भारत-भ्रमण को निकले। उद्देश्य दो थे। प्रथम, एक परिव्राजक की तरह निःसम्बल एवं भगवान् पर पूर्ण रूप से निर्भर हो विचरना तथा पर्वतों, गिरि-कन्दराओं, एवं वनों में भगवान् के ध्यान में डूबे रहना। दूसरा उद्देश्य था, श्री रामकृष्ण के आदर्शों को जीवन में उतारते हुए प्रत्यक्ष उदाहरण स्थापित कर जन-साधारण के कल्याण के लिए उनका प्रचार एवं प्रसार करना। लेकिन इस भारतभ्रमण ने स्वामीजी को भारतवासियों की तत्कालीन अवस्था का प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान किया। उन्होंने सर्वत्र देखा अज्ञान, दारिद्रय एवं अभिजात वर्ग द्वारा निम्न वर्गों का शोषण। ऐसे में क्या श्री रामकृष्ण का सन्देश भारतवासियों को देना उचित होगा? और यदि दिया भी गया तो क्या वे उसे ग्रहण कर सकेंगे, हृदयंगम कर सकेंगे? स्वामीजी को स्मरण हो आयी श्रीरामकृष्ण की वाणी: "भूखे पेट धर्म नहीं होता।" जीवन की मौलिक आवश्यकताओं, रोटी, कपड़ा, और मकान की पूर्त्ति हुए बिना कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता। तमोगुण में डूबे व्यक्ति को तत्व ज्ञान का उपदेश देने से हानि होने की संभावना अधिक है।

भारत-दर्शन के प्रत्यक्ष अनुभव से स्वामी विवेकानन्द श्री रामकृष्ण के अनेक उपदेशों का महत्त्व समझने में समर्थ हुए जो वे पहले नहीं कर पाये थे। महासमाधि के कुछ वर्ष पूर्व श्री रामकृष्ण का मन नरलीला की ओर झुक गया था। भगवान् संसार के स्त्री-पुरुषों का रूप धारण कर लीला करते हैं। वे जगत् से परे अतीन्द्रिय भी हैं, एवं प्राणियों के भीतर प्रविष्ट होकर सीमित से भी हो गये हैं। मनुष्य में उनका विशेष प्रकाश है। श्री रामकृष्ण कथित इन बातों का स्मरण कर एवं भारतवासियों की दयनीय अवस्था का अवलोकन कर स्वामी जी की दृष्टि अतीन्द्रिय जगदातीत परमात्मा से हटकर असंख्य नर नारियों का रूप धारण करने वाले, नर लीला करनेवाले परमात्मा की ओर मुड़ गयी। उत्तर में हिमालय की गुफा-कन्दराओं में बैठकर निर्गुण, निर्विशेष, निराकार ब्रह्म के ध्यान में निमग्न रहने के बदले स्वामी जी अपनी यात्राओं की परिसमाप्ति पर भारत के दक्षिणतम छोर पर कन्याकुमारी के निकट सागर में स्थित चट्टान पर बैठकर सर्वव्यापी अन्तर्यामी, अनगिनत प्राणियों का रूप धारण करने वाले परमात्मा के ध्यान में मग्न हो गये। वर्षों पहले उन्होंने दक्षिणेश्वर में श्री रामकृष्ण के मुख से सुना था।

"शिवज्ञान से जीव सेवा'। उसे सुनकर स्वामी जी गद्‌गद् हो गये थे और उन्होंने यह निश्चय किया था कि गुरुदेव की इस वाणी का प्रचार अवसर मिलने पर विश्व में करेंगे। भारत-दर्शन की अभिज्ञता ने उन्हें श्री रामकृष्ण के इस उपदेश की उपयोगिता और अच्छी तरह से समझा दी। अगर ईश्वर ने ही नर-नारियों का रूप धारण किया है तो उनकी उपासना पद्धति भी तद्‌नुरूप होनी चाहिए। दरिद्र के रूप में लीला करनेवाले ईश्वर की श्रेष्ठ उपासना उसे अन्न, एवं धन द्वारा समृद्ध करनी है। भूखे नारायण को रोटी देना, मूर्त्ति रूपी नारायण के सामने पुष्पार्पण करने से श्रेष्ठतर पूजा है। इस तरह से जीवन्त, जागृत नारायण की पूजा करने से दो लाभ होंगे, प्रथम तो पूजक अपने सभी सेवा कार्यों को आध्यात्मिक रूप प्रदान कर मोक्ष की ओर अग्रसर होगा और निर्धन, अज्ञानी, रोगी व्यक्ति अपनी आवश्यकता की पूर्त्ति होने पर क्रमशः श्री रामकृष्ण के उच्चतर आध्यात्मिक भावों को हृदयंगम करने में समर्थ होगा। आत्मा की मुक्ति और जगत् का हित दोनों ही इससे सधेंगे। साधक और समाज दोनों का ही कल्याण होगा।

स्वामी विवेकानन्द-प्रतिपादित सेवाकार्यों का सामाजिक, वहिर्व्यक्त, वाह्यरूप तो सभी देख एवं समझ पाते हैं, लेकिन उसके वैयक्तिक, आध्यात्मिक अथवा आत्मनिष्ठ पक्ष को समझना अधिकांश लोगों के लिए कठिन है। स्वामी विवेकानन्द के विचारों द्वारा अनुप्राणित एक व्यक्ति को सेवा करते तो सभी देख सकते हैं, लेकिन वह किस भाव से, किस दृष्टि से उसे कर रहा है, यह कोई नहीं जान पाता। यही कारण है कि सर्व प्रथम स्वामी जी के गुरुभाई भी उनकी कार्य प्रणाली से विभ्रमित हो गये थे।

स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई स्वामी प्रेमानन्द भी ऐसे ही एक व्यक्ति थे। वे एक ईश्वर-कोटि महापुरुष थे। रामकृष्ण मठ की स्थापना के प्रारम्भिक काल में वे मठ के व्यवस्थापक थे। उनके चरित्र की एक विशेषता यह थी कि वे बेलुड़ मठ के प्रत्येक छोटे से छोटे कार्य को श्री रामकृष्ण का कार्य समझते थे। मठ में झाड़ू लगाने से लेकर पूजा करने तक के सभी कार्य उनके लिए भगवान की आराधना ही थी। बाहर के लौकिक अथवा "सांसारिक" कहलाने वाले कार्यों में वे अधिक समय गँवाना उचित नहीं समझते थे। कुछ वर्षों तक मठ के व्यवस्थापक रहने के बाद अस्वस्थता के कारण उन्हें अवकाश ले वाराणसी जाना पड़ा। तब उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के साहित्य का पुनः गहराई से अध्ययन किया, और तब उनके विचारों एवं जीवन में अद्‌भुत परिवर्त्तन आ गया। अब तक उनके लिए बेलुड़ मठ ही श्री रामकृष्ण का साम्राज्य था लेकिन अब वे सर्वत्र, सभी प्राणियों में अपने आराध्य देव की उपस्थिति अनुभव करने लगे। फलस्वरूप सभी कार्य, चाहे मठ की चार दीवारी के भीतर हो या उसके बाहर उनके लिए पूजा में परिणत हो गये। बाद में वे श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के सन्देश के प्रचार के लिए पूर्व बंगाल गये। वे स्वामीजी के गुरुभाई होते हुए भी गर्वपूर्वक स्वयं को स्वामी जी का शिष्य कहा करते थे।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित सेवाधर्म श्री रामकृष्ण के उपदेशों से, उद्देशों एवं भाव की दृष्टि से, किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं है। अन्तर केवल गुरुत्व प्रदान एवं कार्य पद्धति में है। यदि हम केवल मूर्त्ति में ही, भगवान को देखेंगे तो उसकी पूजा ही हमारी आध्यात्मिक प्रगति का उपाय होगी। लेकिन यदि हम मानव को, उसके भिन्न-भिन्न रूपों में ईश्वर के ही प्रतिरूप समझने लगेंगे तो उससे सम्बन्धित हमारे समस्त कार्य साधना बन जायेंगे। तब फिर सांसारिक एवं आध्यात्मिक में, लौकिक कार्य एवं साधना में कोई अन्तर नहीं होगा। राष्ट्र के उत्थान में संलग्न एक देशभक्त के लिए भारत माता, अर्थात् असंख्य नर-नारी युक्त यह राष्ट्र ही देवता होगा, तथा इस दिशा में किया गया प्रत्येक कार्य पूजा होगा। समाज में उच्च भाव प्रचार के लिए पत्रिका आदि का प्रकाशन करने वाले लेखक

अथवा सम्पादक के लिए यही कार्य एक आराधना, साधना होगी और इसकी सहायता से वह उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर सकेगा। इस प्रकार सभी कार्यों के विषय में समझना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द प्रेम, हृदयवत्ता, हृदय की अनुभव-शक्ति को समाज सेवा अथवा देश भक्ति की प्रथम शर्त मानते थे। लेकिन सच्चा मानव-प्रेम ईश्वर को प्रेम किए बिना संभव नहीं है। अतः मानव की सेवा में अग्रसर होने के पूर्व भगवान को प्रेम करने की आवश्यकता पर श्री रामकृष्ण बल दिया करते थे। ईश्वर प्रेम के बिना जहाँ मानव-प्रेम संभव नहीं वहीं दूसरी ओर मानव-जाति के लिए, समस्त प्राणियों को प्रेम किए बिना ईश्वर प्रेम की सार्थकता अथवा पूर्णता नहीं हो सकती।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कथित है कि अपने शरीर त्याग के पूर्व श्री रामकृष्ण ने अपनी शक्ति को स्वामी विवेकानन्द के प्रविष्ट करा दिया था। यही नहीं. स्वयं स्वामी विवेकानन्द को एक बार इस प्रकार की अनुभूति हुई थी कि श्री रामकृष्ण सूक्ष्म शरीर के रूप में उनमें प्रविष्ट हो रहे हैं। यही कारण है कि रामकृष्ण-विवेकानन्द के अनुयायी इन दो विभूतियों को एक ही सत्ता के दो रूप समझते हैं। श्री रामकृष्णरूपी यन्त्र के माध्यम से उस ईश्वरी शक्ति ने एक देश, काल विशेष तथा कुछ विशेष पात्रों के लिए एक प्रकार के उपदेश दिये थे। उसी शक्ति ने स्वामी विवेकानन्दरूपी यन्त्र की सहायता से विभिन्न परिस्थितियों, व्यक्तियों एवं अवसरों के अनुरूप भिन्न प्रकार के उपदेश दिये एवं कार्य किये थे। लेकिन इन दोनों का उद्देश्य एक ही था; जगत् का सर्वांगीण कल्याण करना, समस्त प्राणियों को अभ्युदय एवं निःश्रेयस का मार्ग बतलाना एवं उस पर उन्हें बढ़ने में सहायता करना।

श्री रामकृष्ण के द्वारा इस संदेश को गहराई एवं आध्यात्मिक आधार प्राप्त हुआ जबकि स्वामी विवेकानंद ने इसे व्यापकता प्रदान की। स्वामी विवेकानन्द के अभाव में रामकृष्ण संघ इने गिने कुछ लोगों का कल्याण करने वाली "ठाकुर वाड़ी" में परिणत होकर ही रह जाता। और यदि श्री रामकृष्ण के योगदान की उपेक्षा कर दी जाय तो यह संघ एक समाज सेवी संस्था मात्र रह जायेगा। भारत में आज सर्वत्र समाज सेवा जन-कल्याण आदि के कार्यों का बाहुल्य दिखाई देता है। जनता की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए यह आवश्यक है। लेकिन मानव की आध्यात्मिक पिपासाएँ, आवश्यकताएँ भी हैं। यदि उनकी पूर्त्ति न हुई तो सारी भौतिक प्रगति भी उसे शान्ति प्रदान नहीं कर सकेगी। अतः रामकृष्ण-विवेकानन्द—सन्देश के आध्यात्मिक पक्ष को भली प्रकार से हृदयंगम करना नितान्त आवश्यक है। "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" एक ऐसा सन्तुलित आदर्श है, जो मानव एवं समाज दोनों की भौतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति करता है तथा इसमें गहराई के साथ ही साथ व्यापकता भी है।

रामकृष्ण–विवेकानन्द-भावधारा का वैशिष्ट्य

पं० रामशंकर उपाध्याय

पण्डितजी के २ महत्वपूर्ण प्रवचनों का संकलन। कीमत १)

डाकखर्च अलग।

विवेक ज्योति कार्यालय, विवेकानन्द आश्रम,

रायपुर (म० प्र०)

सरदार पूर्ण सिंह की दृष्टि में—
श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द

स्वामी विदेहात्मानन्द

हिन्दी साहित्य का शायद ही कोई ऐसा अध्येता होगा जो अध्यापक पूर्णसिंह के नाम से परिचित न हो, परन्तु इस तथ्य से कम लोग ही परिचित हैं कि उनके जीवन तथा लेखन पर श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द का गहन प्रभाव है। उनके विचारों पर इस प्रभाव का अध्ययन तो विद्वानों के शोध का विषय है, यहाँ पर हम केवल तत्सम्बन्धी कुछ तथ्य मात्र ही प्रस्तुत करेंगे।

अध्यापकजी का जन्म पंजाब के ऐबटाबाद जिले के (जो कि अब पकिस्तान में है) एक गाँव में १८८१ ई० में हुआ था। शिक्षा में उनका मुख्य विषय था—रसायन-शास्त्र। और इसी विषय की उच्चशिक्षा प्राप्त करने १९०० ई० में वे जापान गये और वहाँ टोकियो के इम्पीरियल युनिवर्सिटी में प्रवेश किया। वहीं पर इण्डो-जापानी क्लब में उनकी स्वामी रामतीर्थ से भेंट हुई, जिनके प्रभाव में आकर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया, पर बाद में वे पुनः सिख धर्म में लौट आये। १९०४ ई० में वे भारत लौटे। उसके बाद उन्होंने देहरादून के फारेस्ट इन्स्टीट्यूट में रसायन शास्त्री के रूप में अध्यापन का कार्य किया, इसी कारण वे अपने नाम के आगे अध्यापक लिखने लगे। उन्होंने कुल मिलाकर कोई ७-८ हिन्दी निबन्ध लिखे, जिनमें से अधिकांश १९०८-'१२ के दौरान लिखे गये और सरस्वती में प्रकाशित हुए। हिन्दी में लेखन उन्होंने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुरोध पर किया और पहला निबन्ध 'सच्ची वीरता' १९०८ की सरस्वती में निकला; अन्य निबन्धों के शीर्षक हैं—मजदूरी और प्रेम, आचरण की सभ्यता, पवित्रता, कन्यादान, ब्रह्मकांति, नयनों की गंगा और अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट ह्विटमैन। पं० भोतानाथ तिवारी के शब्दों में—'उनके ये निबन्ध इतने सशक्त हैं कि इतने थोड़े निबन्धों ने ही सरदार पूर्णसिंह को निबन्धकार के रूप में स्थापित कर दिया है।' डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने उन्हें द्विवेदी युग का श्रेष्ठ निबंधकार माना है।

यह एक अद्भुत् विरोधाभास प्रतीत होता है कि हिन्दी के इस महान लेखक को देवनागरी लिपि नहीं आती थी। वे अपनी रचना उर्दू या गुरुमुखी में लिखकर दूसरों से उसका लिप्यन्तरण करा लेते थे। सम्भवतः लिपि की असुविधा के कारण उन्होंने अपना अधिकांश लेखन अंग्रेजी तथा मातृभाषा पंजाबी में किया। अंग्रेजी में उन्होंने नौ कवितासंग्रह तथा पन्द्रह गद्यग्रंथ लिखे हैं और पंजाबी में उनके तीन काव्य और एक निबन्ध संग्रह हैं। टोकियो में रहते समय उन्होंने जापानी और जर्मन भाषा भी सीख ली थी। उन्हें केवल ५० वर्ष की ही आयु प्राप्त हुई थी।

पूर्णसिंह जब केवल १५-१६ वर्ष के थे तभी उन्हें स्वामी विवेकानन्द का दर्शन तथा व्याख्यान सुनने का सौभाग्य मिला था। १८९७ ई० में लाहौर में हुई इस घटना का उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में चित्रण किया हैं—"स्वामीजी ध्यानसिंह की हवेली में ठहरे हुए थे। और मुझे आज की इस घड़ी में भी वह दृश्य स्पष्ट रूप से दिखायी देता है जब स्वामी जी का भाषण सुनने उस दिन हवेली के विशाल भवन में लाहौर का साफाधारी कितना विशाल जनसमूह इकट्ठा हुआ था। मैं उस सयय निरा बालक ही था, पंजाब विश्वविद्यालय की इन्टर परीक्षा के लिए कॉलेज में पढ़ रहा था। किन्तु उस दृश्य की जो छाप मेरी स्मरण-शक्ति पर पड़ी, वह किसी प्रकार धोयी नहीं जा सकती। हवेली ठसाठस भर गयी

थी, और बहुत से मनुष्य आंगन में जमा हो गये थे। स्वामीजी के दर्शनों के लिए उत्सुक सज्जन कंधे से कंधा भिड़ाकर भवन में प्रवेश करने की चेष्टा कर रहे थे। स्वामीजी ने जब ऐसी उत्सुकता और प्रबन्ध से बाहर जाने वाली भीड़ देखी तो बोले—मैं खुली हवा में भाषण दूंगा। हवेली का घेरा, आंगन बहुत बड़ा है और बीच में मन्दिर के आकार का एक ऊँचा प्लेटफार्म भी है। स्वामीजी उस चबूतरे पर चढ़ गये और उस समय उनकी छवि, उत्तम स्वास्थ्य से दमकता हुआ विशालकाय शरीर, संन्यासी की वेष-भूषा, प्राचीन ऋषियों की याद दिलाने वाली मुखमुद्रा, बड़ी-बड़ी मनोहर आँखें, जिनका जादू सारी हवा में व्याप्त हो रहा था! वदन पर एक दुपट्टा उन्होंने लपेटा हुआ था और सिर पर पंजाबी फैशन में नारंगी रंग का साफा बांधे थे। थोड़ी देर में जब वेदान्त केसरी ने गरजना आरम्भ किया और घंटों दहाड़ते रहे, तब पंजाबी ऐसी शान्ति से सुन रहे थे, जैसे जादू मार गया हो।"[1]

इस विषय में उन्होंने और भी लिखा है—"उनका देवताओं जैसा धाराप्रवाह भाषण, उनका सर्वस्व बलिदान करने वाला त्याग, उनकी शक्ति, उनका व्यक्तित्व, उनका विशाल मस्तिष्क— सब ने मिलकर लोगों पर गहरा प्रभाव डाला।"[2]

उपर्युक्त वर्णन से हम अनुमान कर सकते हैं कि स्वामीजी के व्यक्तित्व और व्याख्यान से वे किस हद तक प्रभावित हुए थे। और स्वामीजी से भी बढ़ कर प्रभाव तो उन पर श्रीरामकृष्ण का हुआ था।

अपने 'पवित्रता' निबन्ध में वे लिखते हैं "पवित्रता का चिंतन करते हुए ये मेरे मन के कमरे की दीवारों पर जो चित्र लटक जाते हैं उनका वर्णन करना ही लेखक के लिए तो पवित्रता का स्वरूप जतलाना है। लेखक इस कमरे में कई बार घंटों इन चित्रों के चरणों में बैठा है—इन चित्रों की पूजा की और इनसे पवित्रता के स्वरूप को जितना हुआ अनुभव किया।"[3] उनके मन-मन्दिर के चित्रों में एक श्रीरामकृष्ण की मूर्ति भी है जिसका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—"कलकत्ते के पास एक निरक्षर नंगा कालीभक्त है। कालीभक्त क्या? ब्रह्म-कांति का देखनेवाला फकीर है। इसके नेत्र और इसका सिर, मेरे तेरे नेत्रों और सिरों से भिन्न है। किसी और धातु के बने हुए हैं। मामूली साधु नहीं. जो छू छू करते फिरते हैं। एक कोई स्त्री आई। आप चीखकर उठे। माता कहकर उसके चरणों पर सिर रख दिया। मेरी तेरी निगाहों में यह कंचनी ही थी। पर रामकृष्ण परमहंस की तो जगत् माता निकली। देखकर मेरी आँखें फूट गईं। और मैंने भी दौड़कर उसके चरणों में शीश रख दिया। तब उठाया, जब आज्ञा हुई। दरिद्रो! तुम क्या दे रहे हो? मेरे सामने परमहंस ने कुल विराट् इस माता के चरणों में लाकर रख दिया। नेत्र खोल दिए। अहिल्या की तरह अपना साधारण शरीर छोड़कर यह देवी आकाश में उड़ गई। कहोगे 'पूर्ण तो मूर्तिपूजक हो गया? कुछ भी कहो— मेरे मन की कोठरी ऐसी मूर्तियों से भरी है। इस बुतपरस्ती से पवित्रता मिलने के भाग खुलते हैं, पवित्रता को अनुभव कर ब्रह्मकांति का दर्शन होता है।[4]

अध्यापक पूर्णसिंह की एक अंग्रेजी पुस्तक है—'The Spirit of Oriental Poetrry' (प्राच्य कविता का भावप्रवाह), जिसमें उन्होंने उन एशियाई कवियों के काव्य का मूल्यांकन किया है, जिनसे उन्होंने विशेष प्रेरणा ग्रहण की है। इसमें भारतीय कवियों के साथ ही साथ कुछ फारसी और जापानी कवियों की भी समीक्षा है। इस ग्रंथ में वे लिखते हैं कि "आधुनिक बंगाल में श्रीरामकृष्ण परमहंस की कुछ काव्यात्मक---उक्तियों को छोड़ और कुछ भी जीवनदायी साहित्य नहीं है।[5] फिर श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के जीवन-काव्य का थोड़ा सविस्तार वर्णन करने के पश्चात् वे कहते है--- "ये (विवेकानन्द) ही हैं उस व्यक्ति (श्रीरामकृष्ण) के शिष्य जिनके चरणों में हम जीवन को समझने के लिए प्रणत हो जाते हैं। उनका स्पर्श हमें कवियों में परिणत

कर देता है। उनकी धूनी की राख में कविता भरी पड़ी है। सभी आध्यात्मिक प्रतिभाओं की भाँति ही रामकृष्ण परमहंस भी मनुष्य-निर्माता थे। वह आध्यात्मिक ज्योति, जो दक्षिणेश्वर में प्रज्ज्वलित हुई और कुछ काल तक रामकृष्ण परमहंस के प्रेरित प्रचारक स्वामी विवेकानन्द के माध्यम से चमकी, उसके अतिरिक्त मुझे बंगाल की धरा पर और कुछ (उलेल्खनीय) नहीं दीख पड़ता।"[6]

उपर्युक्त उद्धरणों[7] से हम अनुमान कर सकते हैं कि उनके जीवन और विशेषकर साहित्य पर इस युग्म व्यक्तित्व का कितना गहन प्रभाव हुआ था।

१. स्वामी राम, जीवन कथा, सरदार पूरन सिंह, अनु० दीन दयालु श्रीवास्तव वि० सं० १९६४, पृष्ठ १२२-२३।
२. वही
३. सरदार पूर्णसिंह अध्यापक के निबन्ध, सं० प्रभात शास्त्री, प्र० सं० पृष्ठ ८३।
४. वही, पृ० ९२।
५. पृ० ५८।
६. वही, पृ० ६०
७. मजदूरी और प्रेम में "मानवरूपी ईश्वर की सेवा" उद्धरण

★

सद्य प्रकाशित नवीन प्रकाशित

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं परलोक में जीव का अवस्थान किस किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इन सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साईज, पृष्ठ संख्या १६८ : मूल्य—बीस रुपया।

प्रकाशक :

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००६

एकान्तवास एवं निर्जन में साधना (२)

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

गत अंक का शेषांश

एकान्तवास की विधि

(१) अतः यह आवश्यक है कि एकान्तवास के लिए जाने के पूर्व मन को तैयार कर लिया जाये जिससे वह उस अवसर का पूरा लाभ उठा सके। कुछ दिन पूर्व से ही हमें ध्यान-जप की मात्रा एवं बैठकें बढ़ा देनीं चाहिए। मन एकाग्र न भी हो तो भी शरीर को बार-बार ध्यान के आसनपर बैठने का अभ्यास करा दें। साथ ही निर्जन में साधना को प्रेरणा प्रदान करने वाला निवृत्ति परक साहित्य तथा उन सन्तों की जीवनियाँ पढ़ें जिन्होंने दीर्घकाल तक निर्जन में साधना की थी। इस प्रकार हमारा मन प्रस्तुत हो जायेगा।

(२) दूसरी बात यह ध्यान में रखने की है कि प्रारंभ में अधिक दिनों के लिए एकान्तवास न करें। तीन, पाँच या सात दिन ही व्यस्त रहने वाले कर्मठ के लिए पर्याप्त है। लेकिन इस विषय में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। कुछ लोगों में ऐसी क्षमता होती है कि लम्बे समय तक व्यस्तता के बाद अचानक निर्जन में जाने पर भी वे अपना सन्तुलन बनाये रखकर उसका भरपूर लाभ उठा सकते हैं तथा वहाँ भी लम्बे समय तक रह सकते हैं। यह सुझाव एक सामान्य सतर्कता की दृष्टि से दिया गया है।

(३) कोई ऐसा निर्जन आश्रम, देवालय आदि चुनें जहाँ का वातावरण सात्विक हो तथा किसी सत्पुरुष का संग भी उपलब्ध हो। भले ही हम एकान्त के अवसर पर किसी से वार्तालाप या व्यवहार करना पसन्द न करें पर फिर भी ऐसा कोई सत्संग उपलब्ध होना चाहिए जिसका आवश्यकता पड़ने पर लाभ उठाया जा सके।

(४) एकान्तवास में प्रारंभ से ही अत्यधिक ध्यान-जप करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इसके बदले ध्यान, स्वाध्याय, आनुष्ठानिक बाह्य पूजा, भजन-कीर्तन, कुछ शारीरिक श्रम इत्यादि का एक मिला जुला दैनिक कार्यक्रम बनाना चाहिए जिससे विविधता के साथ ही मन उच्च आध्यात्मिक स्तर पर बना भी रह सके। अन्यथा रूखापन एवं अरुचि की संभावना रहती है। जब ध्यान में मन न लगे तो स्वाध्याय करने लगें, स्वाध्याय करते-करते, बैठे बैठे शरीर जड़ हो तो उठकर कुटिया में झाड़ू लाग दें, या आश्रम का अन्य कोई कार्य कर दें—जिससे शरीर को भी थोड़ा व्यायाम मिले। साधु अथवा ब्रह्मचारी मधुकरी भिक्षा के लिए भी जा सकते हैं। इस तरह के मिले जुले कार्यक्रम में समय व्यर्थ गंवाने की भी समस्या नहीं होगी।

इस प्रकार एकान्तवास को थोड़े समय से एवं मिले जुले कार्यक्रम से प्रारंभ कर, अगले अवसर पर अधिक समय के लिए तथा अधिक तीव्रतर रूप में किया जा सकता है। दूसरी बार १५ दिन या एक महीने के लिए जावें, शारीरिक गतिविधि कम हो, तथा स्वाध्याय लेखन, अध्ययन आदि अधिक हो। तीसरी बार ध्यान—जप का

समय एवं बैठकों में वृद्धि की जा सकती है। अगर भगवच्चिंतन का लक्ष स्पष्ट रहे तो इस तरह निर्जन—साधना को धीरे-धीरे तीव्रतर से तीव्रतम करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

कुछ कालतक एकान्तवास एवं निर्जन में साधना करने के बाद पुनः कर्म क्षेत्र में लौट आना चाहिए। निर्जन में संसार की झंझटों एवं जिम्मेदारियों से छुटकारा पाने में बड़ा सुख है। लेकिन यह सदा स्मरण रहे कि निर्जन-वास और एकान्त में साधना ही लक्ष्य नहीं है। वह साधन है। हमें ऐसी स्थिति प्राप्त करनी है जब हम निर्जन में भी उसी सरलता एवं स्वाभाविकता से रह सकें, जितना जनाकीर्ण परिवेश में। मन को ऐसी स्थिति में उन्नीत एवं प्रतिष्ठित करना है, जहाँ वह सभी स्थितियों में, कोलाहलमय एवं शान्त दोनों ही प्रकार के वातावरण में अपना सन्तुलन बनाये रख सके। वही पुरुष आदर्श है जिसका मन हिमालय की कन्दराओं में भी निरन्तर भगवच्चिंतन की क्रिया से गतिशील है, और जो महानगरी की व्यस्त कोलाहलमय सड़क पर भी ब्रह्म निष्ठा की प्रशान्ति में प्रतिष्ठित है।

कर्मण्य कर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्न कर्मकृत्॥

विवेक चूड़ामणि

—स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक—डॉ० आशीष बनर्जी

अयं स्वभावः स्वत एव यत्पर
श्रमापनोद प्रवणं महात्मनाम्—
सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कश
प्रभाभितप्तामवति क्षितिं किल॥ ३८

दूसरों का दुःख दूर करने में त्वरता महापुरुषों का स्वभाव होता है। बिना मांगे ही वे लोग सहायता के लिए अग्रसर होते हैं। उसी प्रकार जिस प्रकार चन्द्रदेव तीव्र सूर्य किरण द्वारा तापित पृथ्वी को अपने स्निग्ध किरण वर्षण द्वारा शान्त कर देते हैं।

ब्रह्मानन्दरसानुभूतिकलितैः पूतैः सुशीतैःसितैः
युष्मद्वाक्कलशोज्झितैः श्रुतिसुखैर्वाक्यामृतैः सेचय।
सन्तप्तं भवतापदावदहन ज्वालाभिरेनं प्रभो
धन्यास्ते भवदीक्षण क्षतिः पात्रीकृताः स्वीकृता.॥३९॥

संसार रूप दावाबल की ज्वाला से तपे हुए इस शरणागत दास को आप अपने ब्रह्मानन्द रसानुभव से युक्त, मधुर, पवित्र, शान्ति सुख दायक, उदार और वचन रूपी स्वर्णकलश से निकले हुए श्रवण सुख दायक वचनामृत के सिंचन द्वारा तृप्त करें। हे प्रभो, जो लोग पल भर के लिए भी आपके कृपादृष्टि-लाभ के पात्र हुए हैं वे धन्य हैं। ३९

कथं तरेयं भवसिन्धुमेतं
का वा गतिर्मे कतमोऽस्त्युपायः।
जाने न किञ्चित्कृपयाव मां भो
संसारदुःखक्षतिमातनुष्व॥४०

मैं इस संसार समुद्र को कैसे तरूंगा? इस जगत में मेरा यथार्थ आश्रय क्या है? [कर्म, ज्ञान एवं उपासना

में] मैं साधना हेतु किस उपाय को ग्रहण करूँ ? मैं यह सब कुछ नहीं जानता। हे प्रभो, कृपया मेरी रक्षा कीजिए; मेरे संसार-दुःख का नाश कीजिए ॥४०॥

तथा वदन्तं शरणागतं स्वं
संसार दावानलतापतप्तम् ,
निरीक्ष्य कारुण्य रसार्द्र दृष्ट्या
दद्यादभीतिं सहसा महात्मा ॥४१॥

इस प्रकार कहने वाले, संसार दावानल में दग्ध, शरणागत मुमुक्षु व्यक्ति को महापुरुष गुरु करुणामयी दृष्टि से देखकर शीघ्र अभय प्रदान करते हैं ॥४१॥

विद्वान्स तस्मा उपसत्तिमीयुषे
मुमुक्षवे साधुयथोक्त कारिणे ।
प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय
तत्त्वोपदेशं कृपयैव कुर्यात् ॥४२॥

वह विद्वान ब्रह्मज्ञ गुरु, पूर्ण रूप से उपदेशपालन में तत्पर, चंचलता रहित, शमादियुक्त, शरणागत, मुक्ति-कामी शिष्य को कृपा परवश हो (किसी प्रकार के लौकिक लाभ की आशा न रख कर) तत्वोपदेश करे ॥४२॥

"तस्मै सः विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्तचित्ताय शमिन्वताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां
तत्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥"मु,१/२/१३

"यथा विधान, समीप आये हुए, प्रशान्तचित्त एवं संयत उस शिष्य को, ब्रह्मज्ञ गुरु, जिस ब्रह्म विद्या की सहायता से अक्षर परमपुरुष को जाना जाता है उस विद्या का उपदेश भली भाँति देंगे ।"

मा भैष्ट विद्वंस्तव नास्त्यपायः
संसार सिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः ।
येनैव याता यतयोऽस्य पारं
तमेव मार्गं तव निर्दिशामि ॥४३॥

हे विद्वन्, डरो मत। तुम्हारा संसार में पुनः आवागमन न होगा। इस संसार सिन्धु को पार करने का उपाय है। जिस उपाय द्वारा साधक गण इसके पार गये हैं, उसी उपाय का उपदेश मैं तुझे दूंगा ॥४३॥

अस्त्युपायो महान्कश्चित्संसारभय नाशनः ।
येन तीर्त्वा भवाम्भोधिं परमानन्दमाप्स्यसि ॥४४॥

संसार रूपी भय को नाश करने वाला, अवश्य फलप्रद, एक विशेष उपाय है। उस उपाय की सहायता से संसार-समुद्र को पार कर तू परमानन्द को प्राप्त करेगा ॥४४॥

वेदान्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम् ।
तेनात्यन्तिक संसार दुःखनाशो भवत्यनु ॥४५॥

उपनिषद् समूह के तात्पर्यविचार द्वारा संशयादि रहित ज्ञान उत्पन्न होता है। इस ज्ञान की उत्पत्ति के साथ-साथ संसार रूपी दुःख का पूर्ण रूप से नाश हो जाता है ॥४५॥

मुक्ति लाभ का उपाय :

श्रद्धाभक्तिध्यान योगान्मुमुक्षो-
र्मुक्तेर्हेतून्वक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गीः ।
यो वा एतष्वेव तिष्ठत्यमुष्य
मोक्षोऽविद्याकल्पिताद्देह बन्धात् ॥४६॥

श्रुति कहती है – श्रद्धा, भक्ति एवं ध्यान ये तीन मुमुक्षुओं के मुक्ति लाभ के साक्षात हेतु हैं— जो चंचलता को त्याग कर केवल इन साधनों में नियुक्त रहता है, उसे अविद्याकल्पित देह बन्धन से मुक्ति लाभ होता है ॥४६॥

अज्ञान वश ही 'मैं देह हूँ' यह बोध होता है। यह अज्ञान ही जीव का बंधन है। "तस्मै सहोवाच पितामहश्च श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि ।" कै, १/२— पितामह ब्रह्मा ने आश्वलायन ऋषि को कहा था, "श्रद्धा (आस्तिक बुद्धि), भक्ति (भजन – एकमात्र आत्मवस्तु में निष्ठा) एवं ध्यान (एकनिष्ठ भावना), इन तीन योगों द्वारा अर्थात् उपाय द्वारा ब्रह्म को जानो।"

श्रद्धा=आस्तिक्य बुद्धि या साधनचतुष्टय। भक्ति= आत्मानुसंधान या श्रवणमनन में तत्परता। ध्यान= निदिध्यासन एवं समाधि। इन तीनों को योग अर्थात् आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होने का उपाय कहा गया है। श्लोक संख्या २५, ३१ और ३२ में श्रद्धा एवं भक्ति की संज्ञा दी गयी है।

आज्ञान योगात्परमात्मनस्तव
ह्यनात्मबन्धस्तत एव संसृतिः।
तयोर्विभेकोदितबोधवह्नि-
रज्ञानकार्यं प्रदहेत्समूलम् ॥४७॥

तुझ परमात्म स्वरूप का अनात्म बंधन अर्थात् देहादि जड़वस्तु में 'मैं और मेरा' ज्ञान वस्तुतः स्वस्वरूप के ज्ञान के अभाव के कारण ही हुआ है। और उस जड़ के साथ संबंध होने के कारण तुझे जन्म मरण रूपी संसार प्राप्त हुआ है। आत्मा एवं अनात्मा के विचार से उत्पन्न आत्मज्ञानरूपी अग्नि, अज्ञान के साथ उसके कार्य रूप अहंकारादि को भस्म कर देगी ॥४७॥

शिष्य उवाच

कृपया श्रूयतां स्वामिन्प्रश्नोऽयं क्रियते मया।
तदुत्तरमहं श्रुत्वा कृतार्थः स्यां भवन्मुखात् ॥४८॥

शिष्य ने कहा—हे प्रभो, मैं यह प्रश्न करता हूँ। कृपया सुनिए। इसका उत्तर आपके श्री मुख से सुन कर मैं कृतार्थ हो जाऊँगा ॥४८॥

को नाम बन्धः कथमेष आगतः
कथं प्रतिष्ठास्य कथं विमोक्षः।
कोऽसावनात्मा परमः क आत्मा
तयोर्विवेकः कथमेतदुच्यताम् ॥४९॥

बन्धन नाम से जिसे जाना जाता है, उस बन्धन का स्वरूप क्या है? वह बंधन कहाँ से आया? इसकी स्थिति कैसे है? और इससे मोक्ष कैसे मिल सकता है? अनात्मा क्या है? और आत्मा का स्वरूप क्या है? अनात्मा-आत्मा का का भेद किन उपायों द्वारा जाना जाता है। कृपया इन प्रश्नों का उत्तर मुझे कहिये ॥४९॥

श्री गुरुरुवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पावितं ते कुलं त्वया।
यदविद्याबन्धमुक्त्या ब्रह्मीभवितुमिच्छसि ॥५०॥

गुरु बोले—हे शिष्य, तुम धन्य हो, कृतार्थ हो। तुमने अपने वंश को पवित्र कर दिया। अविद्यावन्धन से मुक्त होकर ब्रह्म स्वरूप उपलब्धि की चाह के कारण तुम धन्य हो गये ॥५०॥

ऋणमोचनकर्तारः पितुः सन्ति सुतादयः।
बन्धमोचनकर्ता तु स्वस्मादन्यो न कश्चन ॥५१॥

पुत्रादि पिता को ऋण से मुक्त कर सकते हैं। परन्तु अविद्या रूपी बन्धन से छुड़ाने वाला अपने से भिन्न और कोई नहीं है ॥५१॥

ज्ञान विना मुक्ति नहीं है और ज्ञान अन्तःकरण का धर्म है। साधक को स्वचेष्टा द्वारा अज्ञान का नाश एवं अन्तर में ज्ञान का प्रकाश तथा स्वस्वरूप की अनुभूति करनी होगी। किसी दूसरे के द्वारा यह कार्य सम्भव नहीं।

मस्तकन्यस्तभारादेर्दुःख मन्यैर्निवार्यते।
क्षुदादि कृतदुःखं तु विना स्वेन न केनचित् ॥५२॥

सिर पर रखे हुये बोझे का कष्ट, दूसरे भी दूर कर सकते हैं। परन्तु भूख प्यास आदि का कष्ट अपनी चेष्टा के सिवा और कोई नहीं मिटा सकता। (दूसरे के खाने पर हमारी भूख-प्यास नहीं मिटती ॥५२

पथ्यमौषधसेवा च क्रियते येन रोगिणा।
आरोग्यसिद्धिर्दृष्टास्य नान्यानुष्ठित कर्मणा ॥५३॥

जो रोगी नियमित सुपथ्य एवं औषधि का सेवन करता है, उसे आरोग्य लाभ होता है। किसी और के द्वारा औषधि-पथ्यादि ग्रहण करने पर रोगी निरामय नहीं होता। (क्रमशः)

स्वामी अद्‌भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक--स्वामी विदेहात्मानन्द

भक्त—महाराज ! किसे पुकारूँगा—गुरु को या इष्ट को ?

लाटू महाराज—चाहे जिसको पुकारो, बात एक ही है। गुरु और इष्ट को एक ही समझना। साधना-काल में गुरु और इष्ट के बीच भेद नहीं करना चाहिए। साधना करते करते वह सब समझ में आ जाता है। जो साधना नहीं करेगा, उसके मन में तो ये सब संशय आएँगे ही। अरे ! संशय ही तो समस्त बरबादी का मूल है ! विश्वास करके गुरु के पास गौ की माफिक पड़े रहकर कहना चाहिए—'मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा। तू दिवान, तू दिवान, तू दिवान मेरा।'

भक्त—तो फिर 'गुरुकृपा हि केवलम्'—यही धारणा लेकर हमें आगे बढ़ना होगा। ठीक है न ?

लाटू महाराज अपने साधनपथ पर ठीक जैसे चले थे, भक्त ने उसी भाव की बात कही—'गुरुकृपा हि केवलम्।'

एक अन्य दिन एक दूसरे भक्त ने बलराम मन्दिर में लाटू महाराज से पूछा—'मानव-गुरु में मन लगाने का क्या प्रयोजन है ?' उसके उत्तर में लाटू महाराज ने कहा था, 'गुरु सच्चिदानन्द हैं। इसीलिए उनमें मन लगाने पर सच्चिदानन्द-तत्व का ज्ञान होता रहता है। और गुरु भगवान के भक्त जो हैं। शास्त्र में लिखा है—भगवान में मन लगाने से जो फल प्राप्त होता है, उनके भक्त में मन लगाने से भी वही फल मिलेगा। भक्त भागवत भगवान—तीनों एक हैं।'

भक्त—साधनपथ में गुरु करना क्या अनिवार्य आवश्यकता है ?

लाटू महाराज—साधनभजन करना हो तो एक गुरु करना अच्छा है। तुम चाहो तो भगवान को भी गुरु मान सकते हो। परन्तु भगवान के भक्तों को ही गुरु करना अच्छा है। जानते हो क्यों ? जब तुम्हें प्यास लगती है तो तुम क्या करते हो ? पानी की तलाश करते हो न ! निकट में जहाँ कहीं पानी मिलता है उधर ही जाते हो न ?

भक्त—हाँ महाराज ! ऐसा ही करता हूँ।

लाटू महाराज—सागर ढूँढने जाते हो क्या ?

भक्त—हाथ के पास ही जल मिल जाय तो फिर बताइए कौन सागर की खोज करेगा ?

लाटू महाराज—इसी से तो हो गया। भक्त गुरु हैं नदी के जल और भगवान हैं समुद्र के जल। भगवान के लिए प्यास लगने पर भक्तगुरु के पास जाकर प्यास मिटानी चाहिए। भक्तगुरु को छोड़ दूसरा कोई भी प्यास को तुरन्त दूर नहीं कर सकता।

इसीलिए हमें ऐसा प्रतीत होता है कि साधक लाटू अपने प्राणों की पिपासा के कारण ही मन को सर्वदा ठाकुर में लगाये रहता था। वह न केवल मन ही लगाए रखता था बल्कि साथ ही साथ ठाकुर का ध्यान भी करता रहता था। ठाकुर का ध्यान करते करते साधक-लाटू अमृतमय परमतत्व में लीन हो गया था।

ठाकुर जानते थे कि लाटू भावुक स्वभाव का है। इसीलिए साधना के राज्य में हृदय की भावुकता का अवलम्बन कर चलनेवाली जो साधनाएँ प्रचलित हैं, उनमें से जो प्रधान और सहज फलदायी हैं, ठाकुर ने उन्हीं का सहारा लेकर लाटू को साधनापथ पर परिचालित किया था। उन्होंने स्वयं नामसंकीर्तन कर लाटू

के अन्तर में नाम के प्रति रुचि जगा दी थी। इस सन्दर्भ में रामलाल दादा के मुख से सुनी हुई दो घटनाएं लिपिबद्ध करता हूँ।

"एक दिन कोन्नगर के कुछ भक्त दक्षिणेश्वर में ठाकुर के सामने कीर्तन कर रहे थे। ठाकुर ने स्वयं भी उस कीर्तन में भाग लिया था और अपने प्रिय शिष्य लाटू को भी उसमें योग देने को कहा था। लाटू को इसके पहले कभी मैंने कीर्तन करते नहीं देखा था। लाटू तब उस स्थान दिखाते हुए, पर बैठा था। ठाकुर के बुलाने पर वह उन लोगों के साथ कीर्तन में लग गया। फिर थोड़ा-बहुत नाचने भी लगा। लाटू को नाचते देखकर हम लोगों को भय लगा। ठाकुर के भावस्थ होने पर उन्हें कौन संभालेगा? काफी देर तक नाचते-नाचते अन्त में लाटू अवसन्न हो पड़ा। तब ठाकुर उसकी अवसन्न देह के चारों ओर नृत्य करते हुए रामनाम करने लगे। वैसा मधुर रामनाम मैंने अपने जीवन में पहले कभी नहीं सुना था। कोन्नगर के एक भक्त तो रामनाम करते हुए आनन्द से इतने गदगद हो गये कि अन्त में स्वयं पर नियंत्रण खोकर ठाकुर के पाँव के समीप गिर पड़े। सुना है कि उस दिन उन भक्त ने ठाकुर से रघुवीर मंत्र पाया था। तुम लोगों ने वह मधुर रामनाम नहीं सुना है इसीलिए! (उसकी कल्पना नही कर सकते) अन्यथा उस दिन का वह नाम-संकीर्तन सुन लेने पर उसे आजीवन भूल नहीं पाते।"

"लड़कों को सुबह-शाम कीर्तन करते देखकर ठाकुर के मन में उन लोगों की तरफ से माँ-काली से प्रार्थना करने की इच्छा हुई। एक दिन उन्होंने कहा – 'माँ! यदि तेरी इच्छा हो तो इन लड़कों को थोड़ा भाव आदि हो।' उसके दो दिन बाद ही मैं क्या देखता हूँ कि लड़के कीर्तन करते हुए भाव में गदगद हो रहे हैं। संध्या के समय विष्णु मन्दिर में कीर्तन करते समय लाटू भावावेश में ऐसी हुंकार भरता था कि पूरा मन्दिर ही उसके गले की आवाज से प्रतिध्वनित हो उठता था। फिर भावावेश में बीच-बीच में वह नाचता भी रहता था। एक दिन जब वह ऐसे ही नृत्य और हुंकार कर रहा था, ठाकुर वहाँ आ गये। विष्णु मन्दिर के पुरोहित उन्हें देखकर बड़े आनन्दित हुए और बोले—'इन लोगों के साथ आप भी थोड़ा योग दीजिए—सोने में सुहागा हो जाय।' इस पर ठाकुर क्या बोले जानते हो?—'अजी! अब यहाँ और क्या फोड़न दूँगा? यहाँ तो पाँच-फोड़न मेथी तक पड़ चुका है।"

एक दूसरे दिन की बात है। "उस दिन सन्ध्या के समय ठाकुर के कमरे में कीर्तन हुआ था। कीर्तन करते-करते भक्तगण एक अपूर्व रसमाधुरी में विभोर हो उठे। वह दृश्य अवर्णनीय है। उस दिन ठाकुर ने स्वयं भी कीर्तन में भाग लिया था। और उन्हीं के दिव्योन्माद के फलस्वरूप भक्तगण भी दिव्योल्लास से परिपूर्ण हो उठे थे। उनमें से कोई तो आत्महारा होकर उन्मा ग्रस्त के समान रोने लगा, कोई हँसने लगा और कोई नृत्य करने लगा। एक-दो भक्त कीर्तन के बीच स्तब्ध होकर चित्रलिखे-से स्थिरनेत्र खड़े हो गये। उनमें से एक संज्ञारहित होकर भक्तों के चरणरज में लोटने लगे। उसी कीर्तन में मैं भी (परवर्ती काल में जिन्हें सभी खोका महाराज—सुबोधानन्द कहा करते थे) उपस्थित था। भक्तों की भावविह्वलता के बारे में मुझे सदा ही सन्देह था, अतः निःसन्दिग्ध होने की इच्छा से उस दिन मैं वहीं बैठा रहा। सबके चले जाने पर उस कमरे में मुझे एकाकी बैठे देखकर ठाकुर ने पूछा—'क्यों जी, तुम अब भी बैठे ही हो?' उनकी बात सुनकर मैंने कहा—'मुझे कुछ पूछने का था—आज जो कीर्तन हुआ, उसमें किसको ठीक-ठीक भावावेश हुआ था?' मेरे समान शंकालु को सन्देहमुक्त करने के लिए ठाकुर थोड़ा सोचकर बोले—'आज लाटू को ही ठीक-ठीक भाव हुआ, बाकी सबको अल्प-स्वल्प हुआ था।" (परवर्ती काल में ये बातें हमने स्वामी सुबोधानन्दजी के मुख से सुनी थीं)।

उपर्युक्त प्रसंगों के आधार पर हम कह सकते हैं कि साधक-लाटू को संकीर्तन के बीच ही दिव्य संकेत मिला था। साधनपथ में दिव्य संकेत एक अमोल सम्पदा है। क्योंकि दिव्य संकेत न मिलने तक नाम में ठीक-ठीक रुचि नहीं होती, और यहाँ तक कि नाम में प्रगाढ़ विश्वास भी नहीं जमता। इसके अतिरिक्त साधक जो साधनपथ में आगे बढ़ रहा है यह भी वह स्वयं नहीं समझ पाता। इसीलिए दिव्य-संकेत एक ओर जहाँ साधना में सहायक है, वहीं दूसरी ओर दिव्य संकेत ही साधक की आन्तरिक वेदना का भी कारण है। एक ओर जहाँ यह साधक के हृदय में व्याकुलता की सृष्टि करता है, वहीं दूसरी ओर यह साधक को वैषयिक जीवन के प्रति वैरागी और उदासीन बना डालता है। अक्सर देखने में आता है कि दिव्य-संकेत पाने के बाद से ही साधकों की एक अभिनव अवस्था हो जाती है, जिसमें उनकी मन-बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि अहोरात्रि उसी संकेत की प्रतीक्षा में लगी रहती हैं और उनकी प्राप्ति की आशा में वे अति भजनानन्द में मतवाला होकर अपनी देह-मन-बुद्धि को क्लेषपूर्ण और दुखी कर डालते हैं। दक्षिणेश्वर में साधक-लाटू की भी वही अवस्था हुई थी। अत्यधिक नाचने और रोने में लाटू को अपनी शक्तिक्षय करते देखकर एक दिन ठाकुर ने कहा—'अरे, ज्यादा नाचना-कूदना अच्छा नहीं, उससे कभी-कभी भाव भंग हो जाता है। भाव को गुप्त नहीं रखने से वह अन्तर्मुखी नहीं होना चाहता।"

ठाकुर की इस चेतावनी से लाटू अपने बाह्य-अभिव्यक्तिमान भाव के लक्षणों को यथा सम्भव गोपन रखने का प्रयास करने लगा। परन्तु अन्त में उसमें सफलता मिलने पर भी, वह तत्काल सफल न हो सका था। जो लोग भाव का दिखावा करते हैं, वे लोग इच्छा होने पर भाव को छिपा सकते हैं। परन्तु जो लोग भाव का अभिनय नहीं करते, वे इच्छा होते ही उस पर नियंत्रण नहीं कर सकते। ठाकुर कहते थे 'भाव मानो मतवाला हाथी है! भावहाथी देहघर में प्रविष्ट होकर (देह को) झकझोरता रहता है।' साधक-लाटू की उन दिनों कुछ वैसी ही अवस्था थी। इसीलिए तो कभी वे भाव में गदगद हो जाते और कभी वे चचल अस्थिर दीख पड़ते। हजार कोशिशों के बावजूद लाटू के समान भावुक साधक अपने भावों का संवरण नहीं कर पाता था।

स्वामी गम्भीरानन्द-स्मृति विशेषांक

विवेक शिखा' के पाठकों, प्रशंसकों एवं ग्राहकों को सूचित करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है कि 'विवेक-शिखा' का जुलाई अंक 'स्वामी गम्भीरानन्द-स्मृति विशेषांक' के रूप में प्रकाशित करने की हमारी योजना है। इसमें रामकृष्ण मठ एवं मिशन के ग्यारहवें महाध्यक्ष ब्रह्मलीन श्रीमत् गंभीरानन्द जी महाराज के कुछ महत्वपूर्ण प्रवनों, निबन्धों एवं पत्रों के साथ उनके ऋतम्भर व्यक्तित्व की झांकी और उनके सम्बन्ध में प्रेरक स्मृतियाँ आदि संकलित रहेंगी। इस विशेषांक के प्रमुख रचनाकार पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज, स्वामी गहनानन्द जी महाराज स्वामी आत्मास्थानन्द जी महाराज, स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज, स्वामी आत्मरामानन्द जी महाराज, स्वामी विमलात्मानन्द जी महाराज, स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज आदि हैं।

यह विशेषांक लगभग ८० पृष्ठों का होगा। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज के श्रद्धालु शिष्यों एवं भक्तों से आग्रह है कि वे अपनी प्रति अग्रिम आरक्षित करवा लें। साथ ही कृपालु पाठकों से आग्रह है कि इस विशेषांक के प्रकाशन के निमित्त आर्थिक अनुदान देकर सहायता करने की कृपा करें।

निवेदक

सम्पादक, विवेक शिखा

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

अबुझमाड़ ग्रामीण विकास प्रकल्प

स्वामी आत्मानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (म० प्र०)

(प्रारम्भ २-८-१९८५ से ३१-३-१९८८ तक संक्षिप्त प्रतिवेदन)

अबुझमाड़ ! क्या ही सुन्दर नाम ! और उतना ही सुन्दर रूप !! जो "माड़" (पहाड़ी इलाका) "अबुझ" (अनजाना) रहा है, वह है "अबुझमाड़"। पहाड़ियों और घने जंगलों से घिरा, अनगिनत पहाड़ी नालों से भरा, मध्यप्रदेश के बस्तर जिले का ४,००० वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र, जो सड़कों के अभाव में जून से दिसम्बर तक बाकी दुनिया से कटा रहता है, वह है अबुझमाड़, जहाँ शिक्षा और स्वास्थ्य की कोई रोशनी पहुंच नहीं पायी है। इतना आदिम क्षेत्र है यह कि किसी सरकारी खाते में नहीं है—न राजस्व के, न वन के, जहाँ मनुष्य वन्य पुष्प की भाँति जीवन-वृक्ष की टहनी में खिलकर अनदेखा, अनगाया, अनरोया वहीं कुम्हलाकर झर जाता है।

ऐसे दुर्गम क्षेत्र में अपने सेवा-कार्यों का विस्तार करने का बीड़ा रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, मध्यप्रदेश ने उठाया और बस्तर जिले के नारायणपुर तहसील-केन्द्र में आकर २ अगस्त १९८५ को अपना वेस-कैम्प स्थापित किया। ३१ मार्च १९८८ तक, अढ़ाई वर्ष की अत्यल्प अवधि में, प्रदेश शासन और शुभ चिन्तकों की भरपूर सहायता से आश्रम ने शिक्षा, स्वास्थ्य और कुटीर उद्योग के क्षेत्र में अपने सेवा-कार्यों में जो उपलब्धियाँ हासिल की हैं, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :—

(१) **विवेकानन्द आरोग्य धाम** : यह ३० शय्यावाला आधुनिक उपकरणों से युक्त एक चिकित्सालय है, जिसका निर्माण-कार्य समाप्ति की ओर है। इसका "बाह्य रोगी चिकित्सा विभाग" तैयार होकर २६ जनवरी, १९८६ से अपनी सेवाएँ अंचल के रोगी-नारायणों को प्रदान कर रहा है। ३१-३-८८ तक १,०४,२४० रोगियों की चिकित्सा की गयी, जिनमें २४,८३४ रोगी नये थे।

(२) **विवेकानन्द चल-चिकित्सालय** : इसके माध्यम से इस वन-अंचल के १०० से भी अधिक गाँवों के लोगों को चिकित्सा-सेवा प्रदान की जा रही है। इस चल-चिकित्सालय ने गणेश-चतुर्थी के पावन पर्व पर ७ सितम्बर, १९८६ से काम करना शुरू किया और ३१-३-८८ तक उसके द्वारा ४४,६९१ रोगियों की चिकित्सा की गयी, जिनमें ११,२५८ रोगी नये थे।

(३) **विवेकानन्द विद्यापीठ** : यह वनवासी लड़कों के लिए आवासीय विद्यालय है। इसे २ जुलाई, १९८६ को प्राथमिक की प्रथम ४ कक्षाओं से प्रारम्भ किया गया। अप्रैल १९८८ में प्राथमिक प्रमाण-पत्र परीक्षा में ७ छात्रों की पहली टोली बैठी, जिनको मिले अंकों का प्रतिशत ९६, ९०.५, ९०, ९० ८९.५, ८९.५ और ८६ रहा। शिक्षा जिला कांकेर की इस प्राथमिक प्रमाण-पत्र परीक्षा की प्रावीण्य-सूची में इन बालकों का स्थान निम्नलिखित रहा—पहला, दूसरा, तीसरा (२ बालक), चौथा (२ बालक), तथा सातवाँ। प्रथम आये बालक ने समूचे बस्तर संभाग में पहला स्थान प्राप्त किया, जिसके अन्तर्गत कांकेर और जगदलपुर ऐसे दो शिक्षा जिला हैं। इन सात छात्रों में छः उसी अंचल के आदिवासी हैं। शिक्षा के साथ ही बालकों को खेल-कूद, भाषणकला, कृषि-बागवानी तथा विभिन्न हस्तकलाओं का भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

(४) **विवेकानन्द वनवासी युवा प्रशिक्षण केन्द्र** । इसका उद्देश्य बहु-उद्देशीय कार्यकर्ता तैयार करना है। ऐसे प्रशिक्षित युवकों को आश्रम की विभिन्न सेवा-योजनाओं में अबुझमाड़ के भीतर कार्य करने के लिए नियुक्त किया जा रहा है। प्रशिक्षण की अवधि ६ माह है और इसमें न्यूनतम उच्च/उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में उत्तीर्ण युवक लिये जाते हैं। प्रशिक्षार्थियों को आवास और भोजन की निःशुल्क सुविधा के साथ-साथ ३०/-

प्रति माह जेब-खर्च के लिए दिये जाते हैं। जिन विषयों में प्रशिक्षण दिया जाता है, वे हैं — कृषि, बागवानी, डेयरी, मधुमक्खी-पालन, बांस-काम, बेलमेटल-काम, बढ़ईगिरी, दर्जीगिरी, काष्ठकला, बेकरी, वेल्डिंग, सवाई रस्सी बनाना, शिक्षण-पद्धति, प्राथमिक उपचार आदि। इस प्रशिक्षण के पीछे यह भी हेतु है कि वे लोग आत्म-निर्भर बन सकें और किसी के मुँहताज न बनें। आश्रम उन्हें कच्चे माल आदि की सारी सुविधाएँ प्रदान करेगा। आलोच्य अवधि में क्रमशः ७ और १२ प्रशिक्षार्थियों की दो टोलियाँ प्रशिक्षित की गयीं। इस प्रशिक्षण का लाभ "विद्यापीठ" के बालकों को भी मिलता है। अब प्रशिक्षण की अवधि ६ महीने से बढ़ाकर १ वर्ष की गयी है तथा इस तीसरी टोली में ९ युवक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

(५) **कृषि प्रदर्शन सह प्रशिक्षण फार्म :** आधुनिक तरीके से कृषि, बागवानी का प्रदर्शन करने तथा क्षेत्र के अपठित आदिवासियों को उसमें प्रशिक्षित करने के लिए हमारे नारायणपुर केन्द्र से २ कि० मी० दूर ग्राम ब्रेहेबेड़ा में इसकी योजना बनायी गयी है, जहाँ प्रदेश शासन ने हमें लगभग ५२ एकड़ का भूमिखण्ड उपलब्ध कराया है। जमीन को तैयार करने का काम शुरू हो गया है।

(६) **उचित मूल्य क्रय-विक्रय केन्द्र :** वनवासी लोगों को दैनिक आवश्यकता की चीजें उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने के लिए यह केन्द्र खोला गया है। इसका लाभ बड़ी संख्या में वे लोग ले रहे हैं। इसका अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि वर्ष १९८७-८८ में लगभग ११.५० लाख रुपये की चीजों का विक्रय हुआ।

(७) **अबुझमाड़ के भीतर कार्य :** आलोच्य अवधि में नारायणपुर से ४३ कि० मी० दूर कुतूल में ३४ कि० मी० दूर इरकभट्टी में तथा २२ कि० मी० दूर आकाबोड़ा में सेवा-केन्द्र स्थापित किये गये हैं, जिनके माध्यम से उन सुदूर ग्रामांचलों में शिक्षा, स्वास्थ्य और उचित मूल्य दूकान की सेवाएँ उपलब्ध की गयी हैं। इसी प्रकार कच्चापाल (३९ कि० मी०) एवं कुन्दला (२३ कि० मी०) में भी सेवा-केन्द्र प्रारम्भ कर दिये गये हैं। राज्य के लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग के सहयोग से इन ग्रामों में नलकूप खोदे गये हैं तथा आश्रम ने कुएँ का निर्माण कराया है। सौर ऊर्जा से इन ग्रामों में प्रकाश की व्यवस्था की जा रही है। फिर, इनमें से प्रत्येक गाँव में मिनी कृषि प्रदर्शन फार्म भी स्थापित किया जा रहा है। उचित मूल्य दुकानों का लाभ आस-पास के गाँववाले भी लेते हैं। इन केन्द्रों की चिकित्सा-सेवा से ३१ मार्च १९८८ तक कुल १,१९८ रोगियों ने लाभ उठाया, जिनमें नये रोगियों की संख्या ३८६ थी।

(८) **उत्सव और सांस्कृतिक समारोह :** वन-वासीजनों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए उत्सवों और सांस्कृतिक समारोहों का आयोजन किया जाता है। "आनन्द मेला" के माध्यम से लड़के-लड़कियों में खेल-कूद प्रतियोगिताओं का आयोजन करना, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सबको भागीदारी देना और उनके खेल-कूद एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना — यह उस अंचल में हमारे उत्सव का स्वरूप है।

नारायणपुर में अवतारी महापुरुषों की जयन्तियाँ सोल्लास मनायी जाती हैं। राष्ट्रीय युवा दिवस (स्वामी विवेकानन्द का जन्म-दिवस) के उपलक्ष में १२ जनवरी को छात्र-छात्राओं की आकर्षक रैली निकाली जाती है।

(९) **वस्त्र वितरण :** १९८६-८७ मे लगभग सवा दो लाख रुपये मूल्य के कपड़े अबुझमाड़ के आबाल-वृद्ध-वनिता के बीच वितरित किये गये। ◻

द्रष्टव्य : १. नारायणपुर तथा अबुझमाड़ के भीतर हमारी सारी शिक्षा एवं चिकित्सा सेवाएँ निःशुल्क में दें हैं।

२. आश्रम को दिये गये दान आय-कर से मुक्त हैं।

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

शक्ति

कफ स्वांसी नाशक

यौवन

दिमागी ताजगी

विकास

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१